२४,९७६

विदेशी वीर विद्वान्

४३.५
९९

हरिशङ्कर शर्मा

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

ओ३म्
पुस्तक स
पत्रिका-
लगाना
अधिक
सकते ।
प्राप्त कर

83.4
21

24,196

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
विषय संख्या 83.4/21 आगत नं0 24,196
लेखक शर्मा हरिशंकर
शीर्षक विदेशी वीर विज्ञान

दिनांक	सदस्य संख्या	दिनांक	सदस्य संख्या

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार पुस्तक के ऊपर कोई निशान आदि
न लगाएं।

CC0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पुस्तकालय

गुरूकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

ख्या 83.4 आगत संख्या 28,276

पुस्तक विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि 30 वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापस आ जानी अन्यथा 50 पैसे प्रति दिन के हिसाब से विलम्ब दण्ड ।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

43.5,11
24196

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

43.5,11
24196
CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

२४१५६

ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः
पुस्तक सं० 43:5/11
आगत सं० २४१५६
तिथि०....................
गुरुकुल पुस्तकालय काँगड़ी.

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

विदेशी वीर विद्वान्

[महान् आत्माओं के जीवन-वृत्तान्त]

CH... 1973
Initial ......

लेखक
श्रीहरिशङ्कर शर्मा

BHAWAN VARANASI * MUKUND DAS * BENARES

प्रकाशक
गयाप्रसाद एण्ड सन्स
शफ़ाखाना रोड, आगरा

१६४८] [मूल्य २॥)

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

मुद्रक
जगदीशप्रसाद अग्रवाल, एम० ए०, बी० कॉम०,
दी एज्यूकेशनल प्रेस, आगरा

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

दो शब्द

संसार में कुछ आत्माएँ ऐसी प्रादुर्भूत होती हैं जिनका उद्देश्य लोक को एक नया सन्देश देना होता है । ऐसी आत्माओं का प्रारम्भिक इतिहास भी बड़ा विलक्षण होता है। उनकी महत्ता की रूप-रेखा बचपन में ही दिखाई देने लगती है। जितने महान् पुरुष हुए हैं, उनका शैशव बड़ा ही चमत्कृत और आशापूर्ण रहा है। आगे चल कर इन्हीं विशेष आत्माओं ने अपने विवेक-बल द्वारा बड़ी-बड़ी क्रान्तियाँ और असाधारण उथल-पुथल की है। आत्मिक बल सम्पन्न एक साधारण-सा व्यक्ति लाखों-करोड़ों लोगों के भाग्य का निर्णय कर उनकी सुख-साधना में किस प्रकार सहायक और संलग्न होता है, उसमें नैतिक बल, साहस और निर्भयता के भाव किस तरह भरे रहते हैं, वह लोक-हित-साधन के लिए अपने व्यक्तिगत स्वार्थों की संकुचित भावना किस भाँति त्याग देता है, इत्यादि ऐसी बातें हैं, जो महान पुरुषों की जीवनियों से सीखी जा सकती हैं।

भारतवर्ष की भाँति विदेशों में भी महान् आत्माओं ने लोक-कल्याण के लिए जन्म ग्रहण किये। उन्होंने ऐसे-ऐसे कार्य कर दिखाए जिनके कारण वे सदैव विश्व की विमल विभूतियों में

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

परिगणित होते रहेंगे। अगर वे न हुए होते तो रूस आदि में स्वेच्छाचारिता-पूर्ण शासन की चक्की में पिसने वाली मूक जनता की क्या दशा होती ? आज अन्याय, अत्याचार, उद्दण्डता और उच्छृङ्खलता अपनी सीमा को नष्ट-भ्रष्ट कर सारे संसार में अपना आधिपत्य स्थापित कर चुकी होती। पूँजीवाद और पूँजीपतियों की मारक माया की प्रबल आँधी के आगे दीन-दरिद्र और निर्बलों की सत्ता तुच्छ तूल की तरह उड़ जाती।

जिन महान् पुरुषों ने अपनी संवेदनाशील सहृदयता द्वारा पीड़ित-प्रताड़ितों की करुण कराहट सुन उसे दूर करने का प्रयत्न किया वे ही सच्चे अर्थों में जनता के हृदय-सम्राट् बने और उन्हीं के यशोगान से आज दशों दिशाएँ गूँज रही हैं। ऐसे महान् पुरुष ही विश्व की विमल विभूति कहे जा सकते हैं। उनकी सत्ता-महत्ता और पवित्र-पुण्य स्मृति के प्रभाव से विश्व में श्रद्धा के भाव भर जाना एक साधारण-सी बात है। हमने इस पुस्तक में कतिपय ऐसे महान् पुरुषों के ही संक्षिप्त जीवन-वृत्तान्त दिये हैं, जिन्होंने अपना सारा जीवन लोक-कल्याण में लगा दिया, और जो अपने निश्चित विचारों और दृढ़ प्रतिज्ञाओं से बाल बराबर भी विचलित न हुए। आशा है, विश्व की इन विमल विभूतियों का परिचय पाठकों के लिए रुचिकर सिद्ध होगा।

आगरा
१-७-४८

हरिशङ्कर शर्मा

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

विषय-सूची

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

विदेशी वीर विद्वान्

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

कार्ल मार्क्स

कार्ल मार्क्स का यूरोप में बहुत बड़ा नाम है। उसकी गणना संसार के प्रसिद्ध दार्शनिकों में है। वह आत्मा-परमात्मा अथवा स्वर्ग-नरक की विवेचना करने वाला दार्शनिक न था; प्रत्युत उसका हृदय किसानों और मज़दूरों की दरिद्रता देख कर रो पड़ा था, और उन्हीं की समस्या हल करने के लिए उसने अपना सारा जीवन अर्पित कर दिया। कार्ल मार्क्स को यह देख कर बड़ा आश्चर्य होता था, कि जो लोग अपने प्राण संकट में डाल कर घोर परिश्रम करते हैं, वे तो दरिद्र रह जाते हैं; अन्न-वस्त्र तक के लिए तरसते रहते हैं, परन्तु उन्हीं की मेहनत से दूसरे चालाक लोग मोटे होते जा रहे हैं, और बड़े आनन्द से अपना जीवन बिताते हैं। संसार से दरिद्रता का अभिशाप दूर करने के लिए ही, कार्ल मार्क्स का प्रादुर्भाव हुआ था। उसने अपने विशाल मस्तिष्क से साम्यवाद को जन्म दिया, जो आज सारे संसार के समझदारों के लिए अत्यन्त आदरास्पद बना हुआ है। हिन्दुस्तान में कार्ल मार्क्स को बहुत थोड़े लोग जानते हैं, परन्तु यूरोप में इसकी बड़ी प्रसिद्धि है। वह मज़दूरों और किसानों का त्राता तथा साम्यवाद का विधाता समझा जाता है। 'दरिद्रता का पाप दुनिया से कैसे दूर हो', इसके लिए कार्ल मार्क्स ने जो सिद्धान्त स्थिर किए, वे बड़े ही महत्त्व के

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

हैं। अब तो साम्यवाद सारे संसार में फैलता जाता है। कदाचित ही कोई ऐसा देश हो, जहाँ मार्क्स के अनुयायी न पाए जाते हों।

१८१८ ई० की ५ वीं मई को जर्मनी के ट्रेवेस नामक नगर में एक प्रसिद्ध वकील के घर, कार्ल मार्क्स का जन्म हुआ। मार्क्स का पिता पहले यहूदी था, परन्तु पीछे ईसाई हो गया। कार्ल प्रारम्भ से ही प्रतिभा-सम्पन्न और प्रखर बुद्धि का बालक था। उसके पिता उससे बड़ी-बड़ी आशाएँ लगाए बैठे थे। कार्ल के और भी भाई-बहन थे, परन्तु वे पढ़ने-लिखने और बात-चीत करने में बहुत तेज़ न थे। प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् कार्ल दर्शन तथा क़ानून पढ़ने के लिए बान और बर्लिन विश्वविद्यालयों में भेजा गया। विश्वविद्यालय की निश्चित पढ़ाई पढ़ लेने के पश्चात् अवकाश के समय, कार्ल कविता करता और उपन्यास लिखता. उसकी मौलिक कल्पना शक्ति देख कर सहपाठियों और अध्यापकों को बड़ा आश्चर्य होता। कार्ल ने थोड़े दिनों में ही कई अच्छे उपन्यास लिख डाले, जिन्हें लोगों ने बहुत पसन्द किया। कविता करने में यद्यपि उसकी अच्छी गति थी तथापि इस ओर उसे विशेष अन्तःप्रेरणा न होती थी, इसलिए उसने कविता लिखना बहुत कम कर दिया। वह अपना अधिक समय दर्शनशास्त्र के अध्ययन में ही लगाने लगा। प्रारम्भ में वह प्रसिद्ध यूरोपीय दार्शनिक हेगल का अनुयायी बना, परन्तु पीछे उसे उसके कई सिद्धान्तों पर विशेष श्रद्धा न रही। कार्ल का पिता उसकी दार्शनिक अभिरुचि के कारण सन्तुष्ट न था। वह चाहता था कि उसका पुत्र प्रसिद्ध वकील बन कर प्रचुर धनराशि प्राप्त करे। कार्ल के पिता ने अपने पुत्र को क़ानून की ओर विशेष ध्यान न देने के कारण, कई बार डाटा-डपटा भी, परन्तु सब व्यर्थ। कार्ल अपनी धुन में मस्त था। वह संसार से उदासीन रह कर दार्शनिक समस्याओं को हल करने के लिए ही अपने को अर्पित कर चुका था। कार्ल के क्रान्तिकारी विचार उसके अध्यापकों

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

को भी खटकने लगे थे, जिसके कारण उसे किसी विद्यालय में अध्यापकी का कार्य मिलने की बहुत ही कम सम्भावना रह गई थी। मार्क्स ने 'डाक्टर' की उपाधि प्राप्त करने के लिए एक निबन्ध (थीसिस) लिखा, परन्तु इस निबन्ध में उसने ऐसे भाव व्यक्त किए, जो उपाधि मिलने में पूरी तरह से बाधक थे।

ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता था त्यों-त्यों कार्ल की ओर से उसके माता-पिता को घोर निराशा होती जाती थी। उन्होंने अनेक बार इसको समझाया-बुझाया; चिट्ठियों द्वारा भी ताड़ना दी, कि वह अपनी विचार-धारा को दार्शनिकता के दुरूह मार्ग से बदल कर सफल वकील बनने की ओर ले जाय। ऐसा वकील बने जो धन का ढेर लगा दे। परन्तु धुन के पक्के कार्ल मार्क्स पर इन बातों का कुछ भी प्रभाव न हुआ। वह तो स्वयं दरिद्र रहकर अगणित दरिद्रों की दरिद्रता दूर करने का अटल निश्चय कर चुका था।

विश्वविद्यालय की पढ़ाई समाप्त कर कार्ल ने एक युवती से विवाह कर लिया। यह युवती बड़े सम्पन्न परिवार की थी। इसके बालकपन का अधिकांश कार्ल के साथ खेल-कूद में व्यतीत हुआ था। युवती को उसकी पारिवारिक परिस्थिति के अनुसार कोई अधिक प्रतिष्ठित और सम्पन्न वर मिल सकता था, परन्तु उसने इसकी कुछ भी परवा न कर कंगाल कार्ल के साथ ही विवाह करना उपयुक्त समझा। अपने अनुरूप विचारों की पत्नी मिल जाने के कारण कार्ल का जीवन बहुत सुखमय हो गया। पत्नी भी सच्चे अर्थ में हृदयसे अपने पति के सुख-दुःख की संगिनी रही। कार्ल पर बड़े-बड़े संकट आए, उसे भयङ्कर दरिद्रता का सामना करना पड़ा, परन्तु यह वीर-पत्नी एक क्षण के लिए भी नहीं घबराई। मुसीबतों को पार करती हुई बराबर आगे बढ़ती गई। वीरतादि गुणों में भी कार्ल की पत्नी किसी प्रकार कम न थी। किसान-मज़दूरों की दरिद्रता देखकर इसका भी हृदय द्रवीभूत हो जाता था। कार्ल ऐसी

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

आदर्श पत्नी को पाकर परम सन्तुष्ट था। जब तक यह देवी जीवित रही बराबर अपने पति की परम सहायिका बनी रही।

विवाह से कुछ ही पूर्व कार्ल पत्रकार के व्यवसाय में प्रवृत्त हुआ। वह जिस पत्र में काम करता, उसी के द्वारा अपने राजनैतिक विचार फैलाता। इस समय जर्मनी की अवस्था बड़ी ही भयानक थी। वहाँ स्वेच्छाचारिता पूर्ण शासन का दौर दौरा था। राजकाज में निरंकुशता नंगा नाच नाचती हुई दिखाई देती थी। अधिकारियों की अनुचित आज्ञाएँ ही क़ानून का रूप धारण कर चुकी थीं। दीन-दरिद्रों की ओर कोई देखता तक न था। न्यायालय रिश्वत और सिफ़ारिश के कारण न्याय तथा निष्पक्षता से शून्य हो चुके थे। अन्याय और अत्याचार के कारण प्रजा अत्यन्त दुखी थी। जर्मनी के कुछ विचारशील लोग इस दुरवस्था के प्रतीकार में संलग्न थे, परन्तु उनकी वाणी में विशेष प्रभाव न था। कार्ल ने एक पत्रकार के रूप में इन्हीं लोगों का आश्रय टटोला और वह 'रहेनिश ज़ीटंग' नामक पत्र में प्रधान सम्पादक के पद से प्रभावशाली लेख लिखने लगा। कार्ल अपने लेखों में अधिकतर जर्मन सरकार की मूर्खतापूर्ण नीति की ही आचोचना करता था। उसकी यह आलोचना वहाँ की सरकार पर बम-प्रहार से भी अधिक उग्र असर करती थी। आलोचना के एक-एक शब्द से जर्मन सरकार बुरी तरह तिलमिला उठती थी। जिस पत्रकार की लेखनी में इतना अधिक प्रभाव हो वह भला पुलिस की क्रूर दृष्टि से कैसे बच सकता था। अपने आक़ाओं के इशारे से जर्मन पुलिस 'रहेनिश-ज़ीटंग' पर पिल पड़ी और उसे क़ानूनी शिकंजों में कस कर बन्द करा दिया।

पत्र बन्द हो जाने पर कार्ल ने अपना देश छोड़ कर पेरिस (फ़्रांस) की ओर प्रस्थान किया। वहाँ वह समष्टिवाद (कम्यूनिज्म) का प्रचार करने वाले विद्वान् लेखकों से मिला, और उनके

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

विचारों तथा सिद्धान्तों का बड़ी गम्भीरता पूर्वक अध्ययन करने लगा। साथ ही उसने फ़ारवर्ट्स नामक पत्र की सम्पादकी भी करली। फ़्रांस में आकर भी कार्ल ने अपने अख़बार में जर्मन सरकार की आलोचना का काम जारी रक्खा, परन्तु जर्मन सरकार के दबाव से फ्रेञ्च सरकार ने कार्ल को अपने देश से बहिष्कृत करा दिया। फ़्रांस से निर्वासित होकर कार्ल ब्रूसेल पहुँचा और वहाँ उसने निर्वासित जर्मनों का संघटन कर समष्टिवाद का प्रचार करना आरम्भ कर दिया। एक पत्र भी निकाला; मजदूरों के क्लब भी क़ायम किये। इसी समय कार्ल ने कम्यूनिस्ट लीग की स्थापना की और एक वक्तव्य भी निकाला, जो 'कम्यूनिस्ट मैनीफ़ेस्टो' के नाम से प्रसिद्ध है। यह १८४८ ई० की बात है, जब पेरिस में प्रजातंत्रवादी विप्लव प्रारम्भ हो गया था, और फ़्रांस के बादशाह फ़िलिप को छिपकर अपना देश छोड़ना पड़ा था। जर्मन सरकार फ़्रांस से कार्ल को निकलवा ही चुकी थी, अब उसने बेलजियम सरकार को भी लिखा कि वह ब्रूसेल से कार्ल मार्क्स को निर्वासित करदे।

कार्ल के कारण बेलजियम में कम्यूनिज्म का पर्याप्त प्रचार हो चला था। जिधर देखो उधर यही विचार-शृंखला दिखलाई देती थी। बेलजियम सरकार को इस आन्दोलन से बड़ा भय हो गया और उससे वह नाना प्रकार के अनिष्ट की आशंका करने लगी। अन्ततः उसने कार्ल को गिरफ़्तार कर देश से निकाल ही दिया। कार्ल सीधा फ़्रांस पहुँचा। राज्य-क्रांति हो जाने के कारण फ़्रांस में उसके लिए अब कोई रोक-टोक न थी; बल्कि वहाँ की नई सरकार के एक सदस्य ने उसे अपने यहाँ आने का निमंत्रण दिया था। कार्ल कुछ दिनों पेरिस में रह कर जर्मनी चला गया, और वहाँ से उसने एक पत्र निकाला। कार्ल की लेखनी फिर जर्मन सरकार की आँखों में खटकने लगी। उसने उस पर कुछ राज-कर्मचारियों के अपमान करने का अभियोग भी चलाया। इस मुक़द्दमे में कार्ल

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

ने स्वयं बड़ी योग्यता से वकालत की। परिणाम स्वरूप वह निर्दोष सिद्ध होकर छूट गया। छूटने के दो दिन बाद सरकार की ओर से फिर उस पर राजविद्रोह की अग्नि भड़काने का अभियोग चलाया गया। इस मुक़द्दमे में भी वह बेदाग छूटा। सरकार की विशेष आज्ञा से कार्ल का अखबार बन्द कर दिया गया और उसे देश छोड़कर अन्यत्र चले जाने की आज्ञा भी मिली। जर्मनी से निर्वासित होकर मार्क्स ने फिर फ्रांस की शरण ली। वह पेरिस पहुँचा। यहाँ से भी वह निकाला गया।

अन्ततः मार्क्स अपने छोटे-से परिवार सहित लन्दन पहुँचा। इस समय उसे घोर कष्टों का सामना करना पड़ा। उसकी दरिद्रता का तो कुछ ठिकाना ही न था। इसी बीच में मार्क्स का एक बालक चल बसा! भोजन के अभाव में, कभी-कभी तो मार्क्स के परिवार को कई-कई दिनों तक निराहार रहना पड़ता था। मार्क्स समाचारपत्रों में लेख लिख-लिख कर ज्यों-त्यों अपने कुटुम्ब की गुजर करता, परन्तु उसके लेखों के लिए बहुत ही कम पारिश्रमिक मिलता था। एक बार मार्क्स ने रेलवे की नौकरी करनी चाही, परन्तु वह भी न मिली। अन्त में बड़े प्रयत्न से एक पौण्ड प्रति सप्ताह वेतन पर वह एक पत्र का संवाददाता हो गया। इसी आमदनी से उसके सारे घर का पालन-पोषण होता था। इतनी स्वल्प आय से लन्दन में रह कर निर्वाह करना कितना कठिन है, इसे वे ही लोग जान सकते हैं, जिन्हें वहाँ रहने का कभी अवसर प्राप्त हुआ है।

मार्क्स के पास लन्दन में इतना थोड़ा स्थान था कि उसे एक ही कमरा कई कामों के लिए इस्तैमाल करना पड़ता था। श्रीमती मार्क्स ने अपने एक पत्र में अपने घर-गृहस्थ की आर्थिक दशा का जो वर्णन किया है, वह बड़ा ही करुणा जनक है। उसके पास जो कुछ था वह सब इन मुसीबतों के दिनों में बेच खाया। बर्तन

CC0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

और कपड़े तक बेचने की नौबत आगई। पेट-भर अन्न मिल जाना भी बहुत बड़ी बात समझी जाती थी। कभी-कभी तो खाने के भी लाले पड़ जाते थे। पत्रों का सम्पादन करते हुए, उनके संचालन में भी मार्क्स को बहुत योग देना पड़ता था। उसका बहुत-सा रुपया लेखकों तथा कर्मचारियों के वेतन में खर्च हो जाता था। इस प्रकार वह सदैव कंगाल बना रहता था। एक बार किराया न दे सकने के कारण लन्दन में मकान-मालिक ने मार्क्स के खाट-खटोले तक क़ुर्क़ करा लिए। मेह में भीगते हुए उसे मकान छोड़ना पड़ा। बड़ी कठिनाई से एक होटल में जगह मिली। ये सब मुसीबतें सहते हुए भी, मार्क्स और उसकी पत्नी अपने सिद्धान्तों पर अटल थे। वह एक क्षण के लिए भी निश्चित पथ से विचलित होना न चाहते थे।

१८५२ ई० में ईस्टर के अवसर पर मार्क्स की एक कन्या का देहान्त हो गया, परन्तु उस समय उसकी अन्त्येष्टि के लिए उसके पास कुछ भी न था। रात-भर लड़की का शव पड़ा रहा, किसी ने कुछ भी मदद न की। अन्त को बड़ी मुश्किल से एक पड़ौसी ने कुछ टके दिए; तब कहीं शव दफ़न किया जा सका। एक बार मार्क्स और उसकी स्त्री बुरी तरह बीमार पड़ गये। छोटे-छोटे बच्चों के सिवा देख-भाल करने वाला कोई न था। दवा-दारू के लिए पैसों का अभाव अलग वेदना पहुँचा रहा था। ज्यों-त्यों कर इस मुसीबत से बेचारों के प्राण बचे। बीमारी का यह संकट बड़ा ही दुस्सह और करुणोत्पादक था, परन्तु इस छोटे-से परिवार ने सब कुछ बड़े धैर्य से सहा। बच्चों का कष्ट देखकर मार्क्स मन ही मन दुःखित होने लगा, अब उसने कुछ व्यापार करने की बात सोची, परन्तु श्रीमती मार्क्स ने उसे इस झंझट में पड़ने की सलाह न दी, क्योंकि तिजारत के कारण मार्क्स के आन्दोलन में बाधा पड़ने की आशंका थी।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

दारुण दरिद्रता और बालकों की बीमारी की चिन्ता से मार्क्स और उसकी पत्नी को बड़ा दुःख होता था, परन्तु वे घबराते न थे। उनका चेहरा इस मुसीबत में भी प्रफुल्ल रहता था। वे अच्छी तरह जानते थे कि ये सारी मुसीबतें उन्होंने अपने सिद्धान्तों के कारण स्वयं आमन्त्रित की हैं। वे चाहते तो अपने सिद्धान्तों को ढीला करके बड़े से बड़ा सुख भोग सकते थे, परन्तु जिन हृदयों में असंख्य मजदूरों और अगणित किसानों की दरिद्रता दूर करने का भाव भरा हुआ हो, उन्हें अपनी कंगाली की क्या परवा हो सकती थी। कभी-कभी तो इस घोर विपत्ति में भी मार्क्स अपनी स्त्री के साथ खेलता और गाता-बजाता था।

विदेशों में व्याख्यानों के लिए फ़ीस देने का नियम है। विशेष व्याख्यान-मालाओं के लिए तो व्याख्याताओं को पुष्कल धन-राशि भेंट की जाती है। लन्दन में रह कर मार्क्स भी मज़दूरों में व्याख्यान देने जाया करता, और फ़ीस का प्रश्न उठने पर वह धन्यवाद पूर्वक उसे लेने से अपनी अस्वीकृति प्रकट कर देता था। जिस मार्क्स के बालक निर्धनता के कारण भूखों मर रहे हों; जिस के पास बीमारी में दवा-दारू तक के लिए कौड़ी न हो; जो मकान का किराया न दे सकने के कारण अपने असबाब को भी क़ुर्क़ करा चुका हो, व्याख्यानों के बदले में उसका फ़ीस न लेना साधारण त्याग नहीं था। इस सम्बन्ध में वह बराबर यही कहता रहा कि जिन ग़रीब मजदूरों की निर्धनता दूर करने का मैंने पवित्र व्रत लिया है, उनसे अपने व्याख्यानों के लिए किसी प्रकार की फ़ीस कैसे स्वीकार करूँ। कार्ल की निर्धनता का समाचार सुन कर जर्मनी के प्रधान मन्त्री बिस्मार्क ने उसे अपने यहाँ सरकारी समाचारपत्र में नौकरी करने के लिए संदेश भिजवाया। मार्क्स को फाँसने के लिए यह एक बड़ा प्रभावशाली प्रलोभन-पाश था, परन्तु वह इस जटिल जाल में कब फँसने वाला था। उसने अपने मित्र बूचर को जिसके

CC0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

द्वारा प्रधान मन्त्री का सन्देश आया था, साफ़ लिख दिया कि मैं जर्मनी के सरकारी पत्र की नौकरी करके अपने साथियों की दृष्टि में गिरना नहीं चाहता, और न कुछ टकों के कारण जर्मन सरकार के कार्यों की स्वतन्त्र आलोचना करने के अधिकार से वंचित होने की मेरी इच्छा है। फलतः निर्धनता के कष्ट से पीड़ित मार्क्स को जर्मनी के प्रधान मन्त्री का यह मायिक रूप ज़रा भी मोहित न कर सका।

१८६४ ई० में मार्क्स ने इंटरनेशनल वर्किङ्ग मेन एसोसियेशन (International Working-men Association) स्थापित की जो पीछे "दी इण्टरनेशनल" नाम से प्रसिद्ध हुई। इस एसोसियेशन द्वारा मज़दूरों का बहुत हित-साधन हुआ। मार्क्स सब देशों के मज़दूरों को एक करने की घोषणा करता रहता था। उसकी उपर्युक्त एसोसियेशन का महाधिवेशन 'कांग्रेस' के नाम से विविध स्थानों में हुआ करता था। प्रारम्भ में तो इस संस्था का बहुत प्रभाव बढ़ा, परन्तु पीछे कर्मण्य कार्यकर्ताओं की कमी के कारण वह शिथिल-सी पड़ गई। ऐसी दशा में उसकी उपयोगिता नष्ट हो जाना स्वाभाविक था।

मार्क्स की साहित्य-सेवा बड़ी प्रशंसनीय है। उसने सैकड़ों लेख, वक्तव्य और विज्ञप्तियाँ लिखने के अतिरिक्त कितने ही महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ भी लिखे। उसकी राजनैतिक अर्थ शास्त्र की विवेचना नाम की पुस्तक बहुत प्रसिद्ध है। मार्क्स की मृत्यु के बाद उसके विश्वास पात्र साले और शिष्य ने मार्क्स के पुराने नोटों के आधार पर (Das Kapital) नामक एक ग्रन्थ लिखा था। यह ग्रन्थ साम्यवाद का बाइबिल समझा जाता है, और ऐसा कोई साम्यवादी समुदाय नहीं जिसमें उसका प्रचार न हो। मार्क्स को इस बात का बड़ा दुःख था कि वह अपने जीवन में इस ग्रन्थ को पूरा न कर सका।

रात-दिन के संघर्षमय जीवन ने मार्क्स और उसकी पत्नी का

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

स्वास्थ्य बहुत ख़राब कर दिया था। यों तो उनका सारा जीवन ही संकटपूर्ण रहा, परन्तु पिछले तेरह वर्षों में तो आपत्तियों की पराकाष्ठा हो गई थी। बीमारी और निर्धनता ने नाकों में दम कर दिया था। न खाने को अन्न था न पहनने को कपड़े थे। रहन-सहन की व्यवस्था भी बड़ी शोचनीय थी। दारुण दुःख भोगते-भोगते १८८१ ई० में मार्क्स की पत्नी का देहावसान हुआ और इसके दो वर्ष बाद अर्थात् १८८३ ई० में वह स्वयं भी ६५ वर्ष की आयु में संसार से चल बसा!

मार्क्स के मरने के बाद, समाधि के रूप में उसका स्मारक बनाने का प्रश्न उठा, परन्तु उसके कुछ अनुयायियों के आपत्ति करने पर यह विचार कार्य रूप में परिणत न हो सका। इस अवसर पर एक शिष्य ने बिलकुल ठीक कहा कि मार्क्स का स्मारक गढ़े हुए पीतल अथवा तराशे हुए पत्थर के आकार में नहीं है; वह तो मनुष्यों के हृदय-मन्दिरों में विद्यमान है। संसार में फैला हुआ अन्तर्राष्ट्रिय साम्यवादी आन्दोलन मार्क्स का सच्चा स्मारक नहीं तो क्या है?

कार्ल मार्क्स का सारा जीवन मज़दूरों को पूँजी-पतियों के पंजे से छुड़ाकर उनकी दरिद्रता दूर कराने के प्रयत्न में बीता। मार्क्स की दृष्टि में दरिद्रता भयानक पाप है, जिसका समाज में तनक भी प्रवेश न होना चाहिए। उसने साम्यवाद के जो बड़े-बड़े सिद्धान्त स्थिर किए, उनके अनुसार संसार में राजनैतिक और धार्मिक जितनी विशेषताएँ हैं, वे सब आर्थिक अवस्था के अनुसार होती हैं। मुल्क की माली हालत समाज में छुटाई-बड़ाई बनाये रखने के लिए बहुत बड़ा काम करती है। वर्ग-युद्ध भी इसी के कारण होते हैं। स्वार्थी पूँजीपति इसीलिए धनी हो जाते हैं, कि वे मज़दूरों द्वारा निर्मित वस्तुओं का उचित मूल्य उन्हें नहीं चुकाते बल्कि नाम मात्र की मज़दूरी देकर शेष सब लाभ स्वयं हड़प जाते हैं। अर्थात् ये लोग

CC0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

मज़दूरों के पेट काट कर अपने शरीरों को मोटा बनाते हैं। मार्क्स का कहना है कि साम्यवाद के अनुसार भूमि किसी व्यक्ति या परिवार विशेष की बपौती न बन कर, समस्त प्रजा की सम्पत्ति होनी चाहिए। भूमि का नाम वसुन्धरा है। जीवनोपयोगी वस्तुएँ धरती माता से ही हमें मिलती हैं। यदि इस माता पर कोई अपना अधिकार कर ले तो शेष लोगों को उसके आश्रित रहना पड़ेगा। भूमि पर पूरा अधिकार होने के कारण भूपति लोग उसका मन माना उपयोग कर सकते हैं। भूमि के सम्बन्ध में इस प्रकार का एकाधिपत्य समाज में असन्तोष का कारण बन जाता है, और उससे दरिद्रता, दासता एवं पारस्परिक वैमनस्य की उत्पत्ति होती है। मार्क्स के मतानुसार भूमि किसी सत्ता विशेष के अधीन न होनी चाहिए। उस पर सार्वजनिक अधिकार की आवश्यकता है, जिससे वह सब लोगों की चीज़ रहे, और सब लोग समान रूप से उसका उपयोग करके बराबर-बराबर लाभ उठा सकें। इस प्रकार राजा, रैयत, ज़मींदार या किसान का झगड़ा ही मिट जाय।

मार्क्स संगृहीत धन द्वारा व्यापार करने अथवा सूद खाने के विरुद्ध है। वह कहता है कि किसी व्यक्ति को क्या अधिकार है कि वह पूँजी के सहारे बैठा हुआ, बिना हाथ-पैर हिलाए सुख भोगता रहे, और दूसरे उसके साथी दरिद्र होने के कारण पेट-भर अन्न भी न पा सकें। देश की पूँजी भी व्यक्ति विशेष की वस्तु न होकर सार्वजनिक सम्पत्ति होनी चाहिए, जिसका विभाजन किसी सार्वजनिक समिति द्वारा होता रहे। जो बात भूमि और पूँजी के सम्बन्ध में कही गई, वही कल-कारख़ानों में काम करने वाले श्रमिकों के लिए भी कही जा सकती है। फ़ैक्टरियों में रात-दिन काम करने वाले मज़दूरों को, बड़ी कठिनाई से कुछ टके दिये जाते हैं, परन्तु उनके द्वारा जो प्रचुर लाभ होता है, वह मालिकों या हिस्सेदारों के घरों में पहुँच जाता है। कितने आश्चर्य की बात है कि जिनके परि-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

श्रम से लाभ हो वे तो बुरी तरह दिन काटें, परन्तु जो कुछ न करें वे आनन्द से विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करते रहें। यदि संसार से पूँजीवाद नष्ट कर दिया जाय तो यह बेढंगी विषमता क्यों देखने में आवे।

मार्क्स सिक्कों के बहुत विरुद्ध है। वह सिक्के के आविष्कर्ता पर जनता के प्रति विश्वासघात करने का अपराध लगाता है। मार्क्स ने सिक्कों को कारतूसों की उपमा दी है, जो दीन-दरिद्रों, मज़दूरों और किसानों के विरुद्ध युद्ध करने में प्रयुक्त किए जाते हैं। साम्यवाद के सिद्धान्तानुसार धन सारे दूषणों की जड़ है। संसार में जब तक पूँजीवाद का बोलबाला रहेगा, तब तक शान्ति और समता के लिए लोग तरसते रहेंगे। धन में कुछ ऐसा प्रलोभन या आकर्षण है जो लोगों को अपनी ओर आकर्षित करता ही रहता है। इस प्रलोभन द्वारा ही संग्रह या एकीकरण के रूप में पूँजीवाद की भावना उत्पन्न होती है। जब तक जीवनोपयोगी वस्तुएँ धन द्वारा प्राप्त होती रहेंगी, तब तक पूँजीवाद का नाश होना कठिन है। पूँजीवाद को नष्ट करने का यही उपाय है कि वस्तुओं का समान रूप से उत्पादन और समान रूप से ही उनका विभाजन या उपयोग हो। पूँजी किसी व्यक्ति या समुदाय विशेष की चीज़ न होकर सब लोगों की सम्पत्ति समझी जाय और सार्वजनिक समिति द्वारा ही उसका समान रूप से विभाजन होता रहे, संक्षेप में कार्लमार्क्स द्वारा प्रवर्त्तित साम्यवाद की यही मोटी-मोटी बातें हैं।

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

फ़्लोरेन्स नाइटिंगेल

वसन्त का मुक्त मादक समीर खिलखिलाती हुई धूप में, रंग-बिरंगे सुमनों से अठखेलियाँ कर रहा था। लाल चट्टानों के बिछौने पर एक पहाड़ी नदी मचलती हुई बही चली जारही थी। उसके एक तट पर लाल-लाल पहाड़ियाँ ऊपर की ओर सिर उठाए धूप ले रही थीं, और दूसरी ओर एक उद्यान था जिसके सघन वृक्ष झुक-झुक कर, रुक-रुक कर बहती हुई सरिता का अभिवादन कर रहे थे। प्रकृति के उस मनोरम उद्यान में कुछ लड़कियाँ गुड़ियों से खेल रही थीं। खेल-खेल में ही अचानक कुछ झगड़ा हो गया। छीन-झपट में किसी गुड़िया की टाँग टूट गई तो किसी गुड्डे के हाथ की शामत आगई। घायल सैनिकों की तरह टूटे-फूटे गुड्डे-गुड़िया घास में इधर-उधर बिखर गए। नोंच-खसोट समाप्त होगई और फिर नए सिरे से गुड़ियों का खेल प्रारम्भ हो गया। घायल गुड़ियों की तीमारदारी की किसी को सुधि न थी; सब अपने-अपने खेल में निमग्न थीं।

किन्तु एक नन्हीं-सी भोली भाली बालिका, जिसकी बड़ी-बड़ी भूरी आँखों में करुणा झलक रही थी, अपनी सब सहेलियों से अलग अपने नन्हे-नन्हे कोमल हाथों से, उन गुड्डे-गुड़ियों को उठा उठा कर सँभाल रही थी। वह किसी की टूटी हुई टाँग सीं कर

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

दुरुस्त कर देती तो किसी का हाथ। धीरे-धीरे सब टूटी-फूटी गुड़ियाँ ठीक हो गईं। कौन जानता था कि यही नन्ही-सी बालिका जो निर्जीव गुड़ियों की सेवा में संलग्न थी, बड़ी होकर एक दिन प्रकृति के सजीव खिलौनों—प्राणियों का भला करेगी।

उस समय के इँगलैण्ड और आजकल के इँगलैण्ड में बड़ा अन्तर है। तब मोटरों और रेलों का कहीं कोई चिन्ह भी न था। मुसाफ़िर घोड़ा-गाड़ियों में इधर-उधर आते जाते थे। जिन दिनों नाइटिंगेल का परिवार इटली से इँगलैण्ड आया था, उन दिनों आज के से लाल खपरैलों के सुन्दर सुदृढ़ मकान नहीं थे। सड़क के इधर-उधर सुनसान मैदान में बिखरे हुए कुछ गाँवों के मटियाले छप्पर ही दृष्टिगोचर होते थे। जब कभी सड़क से कोई घोड़ा-गाड़ी निकलती तो गाँव के कुत्ते भौंकने लगते और लड़के शोर मचाते हुए गाड़ी के साथ भागने का प्रयत्न करते। एक ऐसी ही गाड़ी में बैठकर मिस्टर और मिसेज़ नाइटिंगेल डर्बीशायर-स्थित अपने मकान में पहुँचे।

इनकी दो पुत्रियाँ थीं। एक का नाम था 'पार्थिनन' और दूसरी का 'फ़्लोरेन्स'। फ़्लोरेन्स का जन्म इटली के एक बड़े सुन्दर नगर (Florence) फ़्लोरेन्स में हुआ था। माता-पिता ने उस नगर के नाम पर ही अपनी पुत्री का नाम फ़्लोरेन्स रख दिया था। मि० नाइटिंगेल ललित कलाओं और भ्रमण के बड़े शौक़ीन थे। उन्हें पशु-पक्षियों से भी बड़ा प्रेम था। एक गधा, एक घोड़ा, कुछ टट्टू और कुत्ते तथा अन्य अनेकों अद्भुत जानवर उन्होंने पाल रक्खे थे। मिसेज़ नाइटिंगेल बड़ी विदुषी और सच्चरित्र महिला थीं। उनमें अपने योग्य पिता विलियम स्मिथ के समान, जो दास-व्यापार के कट्टर विरोधी थे, परोपकारिता, उदारता, क्षमा, दया आदि सभी गुण विद्यमान थे। फ़्लोरेन्स में भी अपनी माता के सद्गुणों का होना स्वभावतः उचित ही था।

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

फ़्लोरेन्स की बड़ी बहन का नाम 'पार्थिनन' था। पार्थिनन की प्रकृति फ़्लोरेन्स के सर्वथा विपरीत थी। उसे बनाव-शृंगार से अधिक प्रेम था, रंग-बिरंगे चटकीले कपड़े पहन कर इधर उधर घूमना ही उसे बहुत भाता था। पार्थिनन जब अन्य सहेलियों के साथ बाग़ में फूलों और तितलितों से खेलती रहती तब फ़्लोरेन्स चुपचाप एकान्त में बैठ कर मन ही मन कुछ सोचा करती। कभी कभी उसका जी भी पक्षियों के मधुर कलरव और निर्झर की झर-झर ध्वनि के साथ स्वर मिलाकर आनन्द से विचरने को करता, किन्तु सहसा वह सोचती—ओह! कितना अन्धकारमय है यह जगत।

बड़ी होने पर फ़्लोरेन्स और उसकी बहन पार्थिनन की शिक्षा-दीक्षा घर पर ही प्रारम्भ हुई। पढ़ाई-लिखाई के साथ साथ सीना-पिरोना आदि गृहस्थी के कार्यों में भी वे पूर्णतः निपुण हो गईं। मि० नाइटिंगेल अपनी पुत्रियों को किसी स्कूल में न भेज कर स्वयं घर पर ही पढ़ाते थे। फ़्लोरेन्स का प्रेम अब गुड़ियों से हटकर जानवरों में आगया था। यदि गाँव का कोई जानवर बीमार पड़ता अथवा किसी प्रकार के कष्ट में होता तो फ़्लोरेन्स बुलाई जाती, और वह बड़े प्रेम तथा सच्ची लगन के साथ उसकी शुश्रूषा में लग जाती।

एक बार वह अपने टट्टू पर सवार होकर खेतोंकी ओर जा रही थी। उसने देखा कि भेड़ों का झुण्ड इधर-उधर बिखर कर घूम रहा है। वृद्ध 'रोगर' हाँपता हुआ भेड़ों को एकत्र करने का प्रयत्न कर रहा था किन्तु 'कैप' की अनुपस्थिति में वे वृद्ध के नियंत्रण से बाहर होरही थीं। फ़्लोरेन्स ने अपने टट्टू को आगे बढ़ा कर रोगर से पूछा—'कैप' कहाँ गया है? 'रोगर' ने बताया कि गाँव के कुछ ऊधमी लड़कों ने ढेले मार-मार कर उसे अधमरा कर डाला है।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

फ़्लोरेन्स तत्क्षण उस स्थान पर पहुँची जहाँ बेचारा 'कैप' पड़ा हुआ सिसक रहा था। फ़्लोरेन्स ने उसके घावों को धोकर उन पर पट्टी बाँध दी। थोड़ी ही देर में 'कैप' ने आँखें खोल दीं और वह फ़्लोरेन्स की ओर देखकर कृतज्ञता से पूँछ हिलाने लगा। फ़्लोरेन्स की परिचर्या से कुत्ता शीघ्र ही स्वस्थ होगया। इस घटना से गाँव वाले उसे देवी समझने लगे। उनकी यह धारणा होगई थी कि फ़्लोरेन्स में एक अनौखी दैवी शक्ति है जो मृतप्राय व्यक्ति में भी संजीवनी शक्ति का संचार कर सकती है।

बाल्यकाल समाप्त होने पर फ़्लोरेन्स ने कुमारावस्था में पद रक्खा। अब वह सत्रह साल की शरमीली, सुशील और सुन्दर लड़की थी। प्रायः गृहस्थी का कार्य करते-करते उसके मन में एक अजीब उन्माद-सा आता। वह घर से बाहर आकर संसार के विपद्ग्रस्त मनुष्यों और दीन-दुखियों की दयनीय दशा पर विचार करने लगती। लोकोपकार की भावना उसके हृदय-सरोवर में तरंगें ले रही थी। न जाने क्यों उसे अन्य कार्यों की अपेक्षा निर्बल, रोगी और असहायों की सहायता करने में स्वर्गीय सुख मिलता था। उसके प्रयत्न से यदि किसी को स्वास्थ्य-लाभ हो जाता तो वह अनिर्वचनीय आनन्द अनुभव करती। कुटुम्ब में यदि कोई रोग-शय्या पर पड़ता तो फ़्लोरेंस जी-जान से उसकी परिचर्या में लग जाती।

फ़्लोरेन्स के पिता-जैसा कि हम पहले कह चुके हैं—भ्रमण के अतिशय प्रेमी थे। अपनी दोनों पुत्रियाँ और पत्नी को लेकर वे भूमध्यसागर के समीपवर्त्ती देशों की सैर को निकले। घूमते-घूमते वे फ़्लोरेन्स (Florence) नगर में भी पहुंचे जहाँ उनकी प्रिय पुत्री का जन्म हुआ था। स्विटज़रलैण्ड के पर्वतीय प्रदेश को देखकर फ़्लोरेन्स बहुत प्रसन्न हुई। दैत्याकार पर्वतों के हिमाच्छादित उत्तुंग शिखर कभी मेघों में मुँह छिपा लेते तो कभी चटकीली

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

धूप में मुस्कराते हुए बड़े भले लगते थे।

कुछ दिनों वे पेरिस भी रहे। पेरिस निवासी इन दोनों प्रसन्न चित्त बहनों को देख कर बड़े ख़ुश होते। मित्रमंडलियों के साथ नाचरंग देखते कई सप्ताह व्यतीत हो गए। दुबली-पतली फ़्लोरेन्स की सरल मुस्कान सहज ही सबको आकर्षित कर लेती थी। कभी-कभी हँसते-हँसते वह लोट-पोट हो जाती। हर्षातिरेक से उसके नेत्र चमकने लगते। लोग उसे बहुत चाहते, किन्तु कुछ ऐसे भी थे जो उसकी अलौकिक प्रतिभा और अद्भुत कार्य-कुशलता को देखकर उससे ईर्ष्या करते थे।

पेरिस के विलास-पूर्ण वातावरण में फ़्लोरेन्स को कुछ संतोष न मिला। वह सदा दीन-दुखियों के हितार्थ नये-नये उपाय सोचा करती। कभी-कभी जब वह अपनी मा और बहन 'पार्थिनन' के साथ 'सेल्सबरी' के अस्पताल से गुज़रती, तो पीड़ितों को देखकर उसका हृदय भर आता। उन दिनों अस्पतालों की बड़ी दयनीय दशा थी, न अच्छी नर्सें ही थीं, न रोगियों के लिए साफ़-सुथरे कमरे ही थे। यह देख फ़्लोरेन्स ने नर्स बनने का दृढ़ निश्चय कर लिया।

मा-बाप को जब फ़्लोरेन्स के नर्स बनने की अभिलाषा का ज्ञान हुआ तो वे बहुत झुँझलाये। उस समय नर्सें पतित और दुश्चरित्र समझी जाती थीं। भला फ़्लोरेन्स जैसी कुलीन लड़की का नर्स बनना उसके माता-पिता कैसे सहन कर सकते थे। उन्होंने अपनी प्रिय पुत्री को बहुत समझाया, किन्तु धुन की पक्की फ़्लोरेन्स को वे उसके दृढ़ निश्चय से डिगा न सके।

आठ साल तक वह घर पर ही औषधियों का अध्ययन करती रही। विभिन्न अस्पतालों के सम्बन्ध में उसने घर पर ही काफ़ी जानकारी प्राप्त करली थी। अपने घुमक्कड़ पिता के साथ वह देश-विदेश के अनेक अस्पतालों को देखती फिरी। एक बार जब

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

वह 'रोम' में थी, तो उसे एक अस्पताल में काम करने का अवसर प्राप्त हुआ। इससे उसकी नर्स बनने की अभिलाषा और भी प्रबल होगई।

उस समय जर्मनी में राइन नदी के सुरम्य तट पर 'कैसर वर्थ' नामक एक अस्पताल था। इस अस्पताल की अन्य अस्पतालों की अपेक्षा कुछ अच्छी व्यवस्था थी। रोगियों के खान-पान और रहन-सहन का भी समुचित प्रबन्ध था। फ्लोरेन्स की इच्छा इसी अस्पताल में कार्य सीखने की हुई। इस समय वह उस अवस्था में पदार्पण कर रही थी जिसमें अधिकतर लड़कियाँ प्रेम-रोग से पीड़ित हो जाया करती हैं। उन्हें सुन्दर वस्त्र पहनकर मित्र-मण्डली में गपशप लड़ाना, खेल-तमाशों में जाना और सांसारिक चिन्ताओं से दूर 'स्वान्तःसुखाय' जीवन ही अधिक भाता है। इसी अवस्था में फ्लोरेन्स ने कष्ट से कराहते लोगों की सेवा का बीड़ा उठाया।

१८४९ में उसकी मा और बहन 'कार्ल्सबाद' के उष्ण प्रपातों में जल-चिकित्सा के लिए आईं। फ्लोरेन्स भी भला ऐसा सुयोग कब छोड़ने वाली थी। इस स्थान (कार्ल्सबाद) से कैसरवर्थ समीप पड़ता था। अपनी मा और बहन की सेवा के साथ-साथ उसने कैसरवर्थ भी जाना प्रारम्भ कर दिया और यहीं पर उसने 'नरसिंग' की प्राथमिक शिक्षा प्राप्त की। जर्मनी से लौट कर उसने एक पुस्तक भी प्रकाशित की जिसमें कैसरवर्थ के प्रबन्ध की बहुत प्रशंसा की थी।

अब फ्लोरेन्स के कुटुम्बियों ने भली भाँति जान लिया कि उसके दृढ़ निश्चय के आगे उनके विरोध का बाँध अधिक न टिक सकेगा। क्योंकि वह जितनी कोमल और सुन्दर थी उतनी ही दृढ़ निश्चय भी।

'हार्लेस्ट्रीट' में प्रथम बार फ्लोरेन्स ने अपना जन-सेवक अस्पताल खोला। इसने लोगों की आँखें खोल दीं और उन्होंने

CC0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अच्छी तरह देखा कि स्त्रियाँ केवल पुरुषों के मनोविनोद की वस्तु ही नहीं, वे संसार में महान् कार्य भी कर सकती हैं।

इसी बीच 'क्रीमिया का युद्ध' प्रारम्भ हो गया। इँगलैंड और फ्रांस की सम्मिलित सेनाओं ने रूस से युद्ध ठान दिया। भयंकर मारकाट और भीषण रक्तपात होने लगा। वस्त्रों का उचित प्रबन्ध न होने के कारण सैकड़ों सैनिक शीत की प्रचण्डता से काल के कवल बन गए!

समाचार पत्रों में भिन्न राष्ट्रों की विजय के साथ सैनिकों की दुर्दशा के भी लोमहर्षक समाचार आने लगे।। घर-बार और कुटुम्बियों से दूर क्षत-विक्षत सैनिक घोर यातना और पीड़ा से सिसक रहे थे। उनकी परिचर्या का कोई प्रबन्ध नहीं था। युद्ध-स्थल से एक संवाददाता ने लिखा—'क्या हमारे देश में सैनिकों की सेवा के लिए उत्साह-सम्पन्न स्त्रियों का अभाव है? क्या इँगलैण्ड की पुत्रियों में से कोई इतनी दयालु नहीं है जो इस पुण्य कार्य के लिए तैयार हो?'

फ्लोरेन्स ऐसे अवसर पर कब चुप बैठ सकती थी। उसने स्वयं सेविकाओं का एक दल बनाया और अपनी संरक्षकता में वह उन्हें 'स्कुतरी' ले पहुँची। वहाँ जो दृश्य उसने देखा उससे उसे मर्मान्तक पीड़ा पहुँची। घायल सैनिक अँधेरे कमरों में अस्त-व्यस्त रूप से ज़मीन पर पड़े कराह रहे थे। चूहों के मारे अलग नाक में दम था। भूखे भेड़ियों की तरह वे रात के अन्धकार में घायलों की बोटियाँ नोचते-खसोटते थे।

फ्लोरेन्स ने व्यर्थ समय न गँवाकर कार्य में लग जाना उचित समझा। उसने चूहों को दूर करने के लिये चूहेदानों का प्रबन्ध किया और कुछ चारपाइयाँ भी मँगाई। फ्लोरेन्स ने झाड़ू लेकर स्वयं कमरों को साफ़ किया। सैनिकों के भोजन और वस्त्रों का काम उसने खुद सँभाला। इतने बड़े कार्य को इस प्रकार सुचारु

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

रूप से संपन्न होते देख लोग आश्चर्य-चकित रह गये।

सैनिक लोग फ़्लोरेन्स की देवी के समान पूजा करने लगे। वह जिधर निकल जाती उधर ही हर्ष की एक लहर-सी उठने लगती। कभी वह किसी का सिर दबाती तो कभी किसी से स्नेहपूर्ण शब्दों में वार्त्तालाप कर उसे प्रसन्न करती। उसकी उपस्थिति में, सैनिक कठिन से कठिन 'ऑपरेशन' भी शान्तिपूर्वक सह लेते। उनके हृदय में फ्लोरेन्स के लिए श्रद्धा और भक्ति का पारावार न था। वे उसकी छाया को प्रेमपूर्वक चूमते और उसके दीर्घजीवी होने की शुभकामना करते। उसके आने से पूर्व सैनिक असभ्य शब्दों में गाली-गलौज किया करते थे, बहुत से तो घर की याद कर आँसू बहाते थे, किन्तु फ्लोरेन्स के आते ही ये सब बातें निर्मूल हो गईं।

दिनभर के कठिन परिश्रम के उपरान्त रात को भी फ्लोरेन्स विश्राम का नाम न लेती। वह लैम्प जलाकर बैठ जाती और सैनिकों के कुटुम्बियों को उनकी स्वस्थता के समाचार भेजती। कभी-कभी उसे दुःख के साथ मृत्यु-समाचार भी भेजने पड़ते थे।

निरन्तर परिश्रम करते रहने के कारण फ्लोरेन्स बीमार पड़ गई। डाक्टरों ने उसे इँगलैण्ड लौट जाने की सलाह दी, किन्तु उसने उक्त संकटकाल में रोगियों को छोड़कर अपने कार्य-क्षेत्र से हटना उचित नहीं समझा, और वह वीरता पूर्वक अपने कर्त्तव्य-पालन पर डटी रही। कुछ दिनों में ही वह स्वस्थ हो गई।

अन्त में सन्धि हुई, और युद्ध बन्द कर दिया गया। युद्ध समाप्त होने पर फ़्लोरेन्स प्रतिष्ठा पूर्वक इँगलैण्ड वापस पहुँची। वहाँ उसका ख़ूब स्वागत-सत्कार हुआ। उसे अनेक उपाधियों से विभूषित किया गया और उसके नाम पर एक अस्पताल खोला गया। इँगलैण्ड में रह कर फ़्लोरेन्स सेवा-कार्य के अतिरिक्त भाषण दे-देकर नारी जाति में जन-सेवा के भाव उत्पन्न करती रही। वह सद्गृहस्थों के घरों में जाती और वहाँ स्त्रियों को सेवा का महत्त्व

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

४३.५
११ २४११६

समझाती। फ्लोरेन्स कहा करती थी—यदि किसी स्त्री-पुरुष को अपने अनुकूल बनाना हो, तो उसके बच्चों से प्रेमपूर्ण व्यवहार करना चाहिए। यह एक वशीकरण मन्त्र है। जिस तरह मनुष्य अपने बच्चों पर प्रेम करने वाले व्यक्ति से खुश होता है, उसी तरह परमेश्वर भी अपने सन्तान—प्राणिमात्र—की सेवा-सहायता करने वालों से प्रसन्न रहता है। इसलिए अगर ईश्वर को प्रसन्न करना है, तो उसके बच्चों से प्रेम करो। प्राणियों की सेवा ईश्वर की सबसे बड़ी सेवा और पूजा है।

फ्लोरेन्स ने लोगों को समझाया तथा स्वयं अपना उदाहरण उपस्थित करके उनके हृदयों में से नरसिंग के प्रति भरे हुए घृणा के भाव दूर कर दिए; जिसके फलस्वरूप अब लोग इस कार्य को चरित्रहीन स्त्रियों का व्यवसाय नहीं समझते। आज इस दिशा में जितनी उन्नति दिखाई देती है—सर्व साधारण स्त्रियों को इस कार्य में प्रवृत्त होने के लिए जो प्रोत्साहन मिला है, वह सब फ्लोरेन्स नाइटिंगेल के ही अनुपम साहस और असाधारण अध्यवसाय का परिणाम है। फ्लोरेन्स मौखिक उपदेश ही देती तो कदाचित् उसका इतना प्रभाव न पड़ता, परन्तु वह तो जो कहती उसे स्वयं करके भी दिखलाती थी। उसके उपदेश उसके हृदय के सच्चे उद्गार थे। जब से फ्लोरेन्स ने होश सँभाला तब से अपना सारा जीवन सेवा-कार्य के लिए उत्सर्ग कर दिया। प्राणि-सेवा ही उसका धर्म-कर्म, पूजा-पाठ और सब कुछ था। वस्तुतः परम गहन सेवा-धर्म को जिस सुन्दरता के साथ इस देवी ने निभाया, वह उसका ही काम था। आज दयामयी फ्लोरेन्स का भौतिक शरीर इस संसार में नहीं रहा, परन्तु उसका अमर यशः शरीर आज भी हम लोगों के बीच मौजूद है, और जब तक चन्द्र-दिवाकर मौजूद हैं, रहेगा। सत्य है—जीवन उन्हीं का सार्थक है जो औरों के लिए जीते हैं।

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी
CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

मुस्तफ़ा कमालपाशा

कड़ाके की सर्दी थी, लजसन की सारी सड़कें अभी तक सुप्त और शान्त पड़ी हुई थीं, मानो उनके लिये अभी सूर्योदय हुआ ही न था। कॉफ़ी-हाउस का बूढ़ा चौकीदार बैठा हुआ ठंड से दाँत किटकिटा रहा था। थोड़ी दूर पर चट्टानों के कलेजे चीरती हुई, स्वतन्त्रता के अभिमान में अपनी ही सुनती और अपनी ही सुनाती, पाल्जा नदी तीक्ष्ण वेग में उमड़ती इठलाती बही चली जारही थी। नदी के उस पार एक चट्टान पर बैठा एक नौ वर्षीय बालक कल्लोलिनी की लोल लहरों पर थिरकते हुए उदयकालीन सूर्य के प्रतिविम्ब को देख-देख मनोविनोद में मग्न था। जैसे ही उस बालक ने पर्वत की उपत्यका में चरती हुई अपनी भेड़-बकरियों की ओर दृष्टि घुमाई, वैसे ही उसे नाश्ता लेकर आती हुई अपनी मा दिखाई पड़ी।

"बेटा, अब तुमको यह कार्य छोड़ना पड़ेगा"—समीप आते-आते बालक की मा ने कहा।

"तो फिर क्या करूँगा मा?" बालक ने सहज भाव से पूछा।

"अब तुम्हारी मौसी तुम्हें स्कूल में पढ़ने भेजेगी। चरवाहे से अब तुम विद्यार्थी बनोगे" स्नेह पूर्वक बच्चे के सिर पर हाथ फेरते हुए मा बोली।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

इस बालक का नाम मुस्तफ़ा था। मा की बातें सुनकर उसकी भोली मुखाकृति एक भावपूर्ण मुद्रा में परिणत हो गई।

❀ ❀ ❀ ❀

अलीरिज़ा इटली के सैलोनिका नगर का रहने वाला बड़ा ही निर्धन व्यक्ति था। उसी के कंगाली-कलित कुटीर में आज से ठीक साठ वर्ष पूर्व उसकी पत्नी ज़ुबेदा के गर्भ से मुस्तफ़ा का जन्म हुआ था। सन् १८८३ ई० में अलीरिज़ा की मृत्यु हो जाने पर निराधार ज़ुबेदा आठ वर्ष के बालक मुस्तफ़ा को लेकर लज़सन ग्राम में अपने भाई के घर चली गई। मुस्तफ़ा वहाँ अपने मामा की भेड़-बकरियाँ चराया करता। वह अपने चरवाहे के जीवन से विशेष प्रसन्न न था, फिर भी विवश होकर उसे वह काम करना ही पड़ता। ज़ुबेदा की एक बहन (मुस्तफ़ा की मौसी) को भी मुस्तफ़ा का यह जीवन पसन्द नहीं आया और उसने उसे एक स्कूल में प्रविष्ट करा दिया। ज़ुबेदा तो अपने बच्चे के उस विकास-विरहित कार्य से बहुत ही असन्तुष्ट थी, परन्तु वह बेचारी कुछ कह न सकती थी। मुस्तफ़ा दिन-रात चौपायों और चरवाहों के संसर्ग से बिलकुल आवारा और उजड्ड हो चला था, परन्तु अब वह अपनी मौसी की कृपा से सैलोनिका के एक विद्यालय का विद्यार्थी बन गया।

विद्यालय में पहुँच कर भी मुस्तफ़ा अध्यापकों के प्रति उदासीन और सहपाठियों से अलग-थलग रहता। परिणाम स्वरूप वह वहाँ लोक-प्रियता प्राप्त करने में असफल रहा। यदि कोई सहपाठी मुस्तफ़ा के किसी कार्य में हस्तक्षेप कर देता तो वह उससे अच्छी ख़ासी फ़ौजदारी कर बैठता था। न मालूम उसे सहपाठियों के साथ उठने-बैठने और खेलने-कूदने में क्यों आनन्द नहीं आता था। वस्तुतः वह अब तक स्वतन्त्र रहने-रहते उच्छृङ्खल होगया था। भला उसे विद्यालय का नियन्त्रित और नियमित जीवन

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

कैसे पसन्द आता ? आखिर एक दिन अपनी उद्दण्ड प्रकृति-वश मुस्तफ़ा अपने एक अध्यापक से भी लड़ पड़ा। बात यहाँ तक बढ़ी कि हाथा-पाई की नौबत आगई, और ग़रीब गुरुजी को गुरु-दक्षिणा देकर फिर मुस्तफ़ा ने मदरसे की ओर मुँह भी न किया।

जुबेदा की इच्छा थी कि उसका लड़का पढ़-लिखकर पुरोहित बने, परन्तु अक्षरों की पढ़ाई-लिखाई से मुस्तफ़ा कोसों दूर भागता था। हाँ, उसे सैलोनिका-स्थित सैनिक शिक्षणालय में प्रविष्ट कराने की अपने चचा की सम्मति बहुत भाती थी। सैनिक-विद्यालय के विद्यार्थी—अपने पड़ौसी अहमद को सैनिकों की वेश-भूषा में देखकर मुस्तफ़ा का मन मुग्ध हो जाता और लड़ाई की बातें सुन कर उसका हृदय उल्लास से बल्लियों उछलने लगता। अन्ततः मुस्तफ़ा एक दिन चुपके ही घर से निकल भागा और अपने एक मित्र की मदद से सैनिक शिक्षणालय में प्रविष्ट होगया।

यहाँ आकर भी मुस्तफ़ा के स्वभाव में विशेष परिवर्त्तन नहीं हुआ। वह पहले जैसा चिड़चिड़ा ही बना रहा और इसी कारण वह यहाँ भी लोकप्रिय न बन सका। यदि कोई उससे पूछता-"भाई, तुम इस तरह सबसे अलग-थलग और ऐसे क्रुद्ध-से क्यों रहते हो ?" तो मुस्तफ़ा का उत्तर होता—"मैं तुम लोगों की भाँति सामान्य सिपाही बनना नहीं चाहता। मुझे तो कुछ और ही बनना है।" मुस्तफ़ा उस समय चाहे जिस भाव से ऐसी बातें करता हो, परन्तु आगे चलकर उसका कथन अक्षरशः सत्य सिद्ध हुआ। आख़िर वह और कुछ ही बन कर रहा।

मुस्तफ़ा यद्यपि पढ़ाई-लिखाई से सदा दूर भागता था, फिर भी गणित में उसकी गति असाधारण थी। परेड में तो मुस्तफ़ा की प्रखर प्रतिभा देख कर विद्यालय के अध्यापक भी चकित रह जाते थे। वे मुस्तफ़ा की परेड सम्बन्धिनी फ़ुर्ती और सफ़ाई

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

उदाहरण के तौर पर दूसरे लड़कों को दिखाने और उनसे उसका अनुकरण करने की प्रेरणा करते थे। इस विद्यालय में केप्टिन मुस्तफ़ा नाम का एक शिक्षक भी था। वह मुस्तफ़ा के क़वायद सम्बन्धी क्रिया-कलाप को देखकर अक्सर कहा करता—'भाई, तुम तो हर एक काम में कमाल करते हो।' उसने कुछ तो मुस्तफ़ा के गुणों से प्रसन्न होकर तथा कुछ अपने और उसके नाम में अन्तर करने के लिये इसके नाम के आगे 'कमाल' शब्द जोड़ दिया था। उस दिन से विद्यालय में सभी लोग मुस्तफ़ा को 'मुस्तफ़ा कमाल' कहकर पुकारने लगे और इस कमाल के योग ने वास्तव में कमाल ही कर दिया। अब मुस्तफ़ा पहले की भाँति पढ़ने से जी न चुराता था। बल्कि बड़ी लगन से पढ़ता और परीक्षा में योग्यतापूर्वक उत्तीर्ण होता, जिसके फलस्वरूप उसको नीची कक्षाओं का संरक्षक बना दिया गया। संरक्षण कार्य में भी उसने अपनी अपूर्व योग्यता का परिचय दिया, अधीनस्थ सैनिक विद्यार्थियों पर नियन्त्रण (Command) करने में मुस्तफ़ा एक विशेष प्रकार का आनन्द अनुभव करता था। कदाचित् उस समय वह यह नहीं जानता था, कि उसे जीवन-भर यही काम करना है।

कैप्टिन मुस्तफ़ा की मित्रता ने मुस्तफ़ा कमाल में जहाँ अनेक सद्गुणों का समावेश किया, वहाँ एक दोष भी उत्पन्न कर दिया। जब वह पन्द्रह-सोलह वर्ष का नवयुवक था, तभी कैप्टिन के साथ कदाचार की कुत्सित कामना से शहर के गली-कूँचों में घूमने लगा था। परन्तु सौभाग्यवश थोड़े दिनों में ही वह इस कुसंग से निकल गया। इस विद्यालय की शिक्षा समाप्त कर चुकने के कारण उसे 'मैनस्टर' के उच्च सैनिक शिक्षणालय में भेज दिया गया।

जिन दिनों मुस्तफ़ा कमाल इस कालेज में आया, उन्हीं दिनों

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

यूनानियों ने 'क्रेट' पर आक्रमण किया था। शत्रुओं द्वारा आक्रान्त होने पर टर्की सरकार ने भी उनसे युद्ध करने की घोषणा करदी। इसी कारण इस समय मुस्तफ़ा के कालेज में बड़ी सरगर्मी से शिक्षा दी जा रही थी। वहाँ दिन-रात सैनिकों के कूच-क़वायद के कारण उड़ती हुई धूल और चाँदमारी में चलाई गई तोप-बन्दूकों के धूँए के अतिरिक्त कुछ और दिखाई ही न पड़ता था। टर्की के लिए इस समय कड़ी मुसीबत और भीषण रक्तपात का सामना था। युद्ध की दिल दहला देने वाली खबरें तूफ़ान की-सी तीव्र गति से समस्त टर्की में फैल रही थीं। उधर सुलतान के सहृदयता शून्य शासन से असंतुष्ट एवं उसके असह्य अत्याचारों से पीड़ित-प्रताड़ित प्रजा के धैर्य का बाँध भी टूट चुका था। उसकी सीमातीत सहिष्णुता के समुद्र में जोश का ज्वार आ गया था। अब टर्किश जनता में कुछ-कुछ स्वाभिमान के भाव जाग्रत हो उठे थे। वह ख़लीफ़ा के ख़िलाफ़ सर उठाने और बादशाह के विरुद्ध विद्रोह करने को उतारू हो गई थी। उधर दुश्मन दरवाज़े पर घेरा डाले पड़ा था, इधर घर में इस प्रकार असंतोष की आग सुलग रही थी। इस प्रकार तत्कालीन ओत्तमान (O'ttoman) साम्राज्य पर संकट की घन-घटाएँ घहरा रही थीं।

उधर सुलतान ने शत्रुओं के अक्रमण का प्रतीकार करने का प्रयत्न किया, इधर पीड़ित प्रजा ने सुधारों की पुकार मचानी प्रारम्भ कर दी। जगह-जगह आतंकवादियों के षडयन्त्रों की तैयारियाँ होने लगीं। विद्रोही जनता के अनवरत उद्योग से सुलतान का सैन्य संगठन शिथिल प्रायः हो गया। देश में इस प्रकार उथल-पुथल मची हुई देख कर मुस्तफ़ा कमाल का ध्यान भी देश की दयनीय दशा की ओर आकृष्ट हुआ। उसके हृदय में पीड़ित प्रजा के प्रति प्रेम का उद्रेक हो उठा। उसके मन-मानस में देशोद्धार के कार्य में कूद पड़ने की उत्ताल तरंगे उठने लगीं। मुस्तफ़ा ने अपने

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

सहपाठियों को संगठित कर षड्यन्त्र रचने का उपक्रम किया। उसके भाषणों ने विद्यार्थियों पर वह प्रभाव डाला कि वे सब उसके आदेशानुसार सुधार-समर में कूदने के लिए तैयार हो गये। परन्तु विद्यालय के बन्धनों का विचार कर उस समय मुस्तफ़ा को अपने हृदय की जोश-ज्वाला वहाँ की वहीं दबा देनी पड़ी।

मुस्तफ़ा ने उक्त कालेज की शिक्षा सम्पादन करने मेंअ पनी अद्भुत योग्यता का परिचय दिया। क्रियात्मक कार्यों में भी उसकी असामान्य क्षिप्रकारिता और असाधारण कार्य-क्षमता से प्रसन्न होकर कालेज के शिक्षकों ने सेना-विभाग के उच्च अधिकारियों से कमाल की सिफ़ारिश की, जिसके परिणामस्वरूप उसको कुस्तुन्तुनिया के "जनरल स्टाफ़ कालेज" का सब-लेफ़्टीनेण्ट बना दिया गया। इस कालेज में आकर भी मुस्तफ़ा ने अपने कार्य-कलाप से सब को मुग्ध कर दिया। कमाल की भाषण शक्ति तो कमाल की थी ही, उसके आधार पर उसने यहाँ एक "वतन" नाम की सभा भी स्थापित की। सुलतान के अत्याचारों से पीड़ित लोगों के हृदयों में उसके प्रति विद्रोह की आग तो बहुत समय से सुलग रही थी; मुस्तफ़ा ने अपने भाषणों की फूँक मार कर उसे प्रज्वलित कर दिया। अब तो 'वतन' की बैठकें बड़े ज़ोर शोर से होने लगीं। उनमें देश की राजनैतिक परिस्थितियों पर विचार और विवाद होने लगे। होते-होते इस सभा की चर्चा सुलतान के कानों तक भी पहुँच गई, जिससे उसने कालेज में 'वतन' की एक भी मीटिंग न होने देने की कठोर आज्ञा प्रचारित कर दी। सभा पर पाबन्दी लग जाने से मुस्तफ़ा के कार्य-क्रम में कुछ विघ्न तो पड़ा, परन्तु उसने उसे बिलकुल ही स्थगित नहीं हो जाने दिया। वह धीरे-धीरे उसके उद्देश्यों का प्रचार करता ही रहा।

कुछ दिनों में मुस्तफ़ा ने इस कालेज की शिक्षा भी समाप्त कर ली और अब उसको केप्टिन का पद मिल गया। मुस्तफ़ा ने 'वतन'

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

को पुनरुज्जीवित किया और उसका कार्य सुचारु रूप से संचालित होने लगा। किन्तु दुर्भाग्य से एक दिन किसी षड्यन्त्र के सिलसिले में शपथ लेते हुए मुस्तफ़ा और उसके साथी ऐन मौक़े पर पकड़े गये।

दो तीन सप्ताह के कठोर कारावास के पश्चात् मुस्तफ़ा को इस शर्त पर छोड़ दिया गया कि भविष्य में वह ऐसी राजविद्रोहात्मक चेष्टाएँ कभी न करेगा और सुलतान की आज्ञानुसार दमिश्क की घुड़सवार सेना में सम्मिलित होकर पहाड़ी लड़ाकू ड्रूसों का दमन कराने में प्राणपण से प्रयत्न करेगा। कारागार से मुक्त होते ही मुस्तफ़ा को स्वीकृत शर्तों के अनुसार दमिश्क जाना पड़ा। कहने को तो मुस्तफ़ा भविष्य में राजविद्रोह न करने की प्रतिज्ञा कर चुका था, परन्तु उसके हृदय में प्रजा-प्रेम की प्रचण्ड ज्वाला जल रही थी। वह भला ऐसी प्रतिज्ञाओं के पचड़े में पड़कर अपने ध्रुव ध्येय से कैसे विचलित हो सकता था। दमिश्क पहुँच कर भी मुस्तफ़ा ने 'वतन' का कार्य प्रारम्भ कर दिया। यद्यपि यहाँ उसे अपनी सभा से सहानुभूति रखने वाले अधिक साथी न मिलने के कारण इस दिशा में कुस्तुन्तुनिया के समान सफलता प्राप्त न हो सकी. फिर भी मुफ़ीद लुत्फ़ी नामक एक सैनिक शिक्षक से उसे सभा के बहुत से कार्यों में सहायता मिली।

इन्हीं दिनों मुस्तफ़ा को मालूम हुआ कि विद्रोह का बवंडर खड़ा करने के लिये तो सैलोनिका सबसे उपयुक्त स्थान है। बस यह ज्ञात होते ही वह किसी अफ़सर से आज्ञा लिये विना तुरन्त अपनी जन्मभूमि सैलोनिका को चल पड़ा। टर्की सरकार को जब इस बात की सूचना मिली तो वहाँ से तुरन्त मुस्तफ़ा की गिरफ़्तारी का वारण्ट निकाल दिया गया। इधर-उधर बहुत भाग-दौड़ करने के पश्चात् कुछ अन्तरंग मित्रों की मदद से मुस्तफ़ा को सीरिया में छिपने का आश्रय प्राप्त हुआ। वहाँ छिपकर मुस्तफ़ा अपने विपद्

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

के दिन व्यतीत कर रहा था। इन्हीं दिनों टर्की सुलतान को उसके कुछ मित्रों ने सुझाया कि मुस्तफ़ा जैसे लोकप्रिय, बहादुर और साहसी सैनिक के पीछे पड़ कर आप उचित कार्य नहीं कर रहे। आप के इस व्यवहार से मुस्तफ़ा के प्रति प्रेम रखने वाली जनता में बहुत असन्तोष और क्षोभ उत्पन्न हो रहा है।

मुस्तफ़ा के सम्बन्ध में उपर्युक्त बातें विदित होते ही सुलतान ने उस के ऊपर से सब पाबन्दियाँ उठा लीं। फिर क्या था, मुस्तफ़ा निर्भय होकर सैलोनिका पहुँच गया और वहाँ उसने अपना क्रान्तिकारी कार्यक्रम पुनः प्रारम्भ कर दिया। उसके पुराने साथी भी फिर एकत्र होगये और 'वतन' का काम यथापूर्व चलने लगा। इसी समय कमाल को ज्ञात हुआ कि सैलोनिका में एक और भी षड्यन्त्रकारिणी सभा का संगठन है, जिसका उद्देश्य है "एकता और उन्नति"। इस सभा को टर्की के अतिरिक्त इतर देशों के लोगों का भी सहयोग प्राप्त था। मुस्तफ़ा बड़ी-बड़ी आशाएँ लेकर उक्त सभा में सम्मिलित हुआ, परन्तु वहाँ सब ढोल की पोल ही निकली। इस सभा के सदस्यों में स्वतन्त्रता और सेवा की सच्ची लगन दिखाई नहीं देती थी। क्रियात्मकता की अपेक्षा कागज़ी करतब ही अधिक था। बातों का जमा ख़र्च बहुत होता था। और जो कुछ थोड़ा-बहुत रचनात्मक कार्यक्रम था भी, उसे वे लोग मुस्तफ़ा से अपने पाप की भाँति छिपाते थे, इसलिए मुस्तफ़ा को भी अब उधर विशेष रुचि नहीं रह गई। उसने अपने 'वतन' का कार्य ही पूरी शक्ति लगा कर करना प्रारम्भ कर दिया।

एक दिन अचानक सैलोनिका की उस गुप्त समिति ने विद्रोह कर दिया। मेकेडोनिया के नवाब मुहम्मद शफ़क़त पाशा की सैनिक सहायता से सेनापति अनवर ने सुलतान को क़ैद कर लिया और देश में अपनी समिति का शासन स्थापित कर दिया। इन्हीं दिनों मुस्तफ़ा कमाल को नायक अलीरिज़ा के साथ एक सेना का

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

सेनानी बन कर फ्रांस में लड़ाई पर जाना पड़ा था, वहाँ उसने अपने पौरुष-पराक्रम और रण-कौशल द्वारा खूब सफलता प्राप्त की। कुस्तुन्तुनिया लौटकर अलीरिज़ा ने सरकार से मुस्तफ़ा के असीम साहस और प्रबल पराक्रम की ख़ूब प्रशंसा की। सरकार ने भी उसके कार्यकलाप से प्रसन्न होकर उसे सैलोनिका स्थित अफ़सरों के स्कूल का संरक्षक नियुक्त कर दिया। यद्यपि इस नई सरकार ने मुस्तफ़ा की इतनी पद-वृद्धि की थी, परन्तु फिर भी उसकी वर्त्तमान सरकार में लेशमात्र भी श्रद्धा न थी। क्योंकि इस नवीन शासन-समिति ने भी प्रजा की सुख-सुविधाओं को दृष्टि में रखकर कोई नया कार्यक्रम नहीं बनाया था। शासन-पद्धति में किंचिन्मात्र भी सुधार नहीं किया था। जैसी अवस्था सुलतान के शासन-काल में थी, अब वैसी ही नहीं, प्रत्युत उससे भी गिरी हुई थी। इस बार मन्त्रि-मण्डल में बहुत-से विदेशी घुस पड़े थे। मुस्तफ़ा इस बात को ज़रा भी पसन्द नहीं करता था। उसका तो मत था—"टर्की टर्की वालों का है, इसलिए उस पर उन्हीं का शासन होना चाहिए।"

मुस्तफ़ा ने जब देखा कि प्रजा को सुलतान की अधीनता से निकल कर विदेशी मन्त्रिमण्डल की शासन-सत्ता में आजाना, चूल्हे से निकल कर भाड़ में पड़ने वाली कहावत हुई है, तो उसने सैनिकों में देश-भक्ति और विदेशी शासन के प्रति विद्रोह के भाव भरने शुरू कर दिए। अभी मुस्तफ़ा ने अपने शुभ समारम्भ का श्रीगणेश ही किया था, कि मन्त्रिमण्डल को उसके मनोभावों का पता चल गया। तुरन्त ही उसे तत्कालीन समर-सचिव शफ़क़त पाशा ने सेना से हटाकर अपने कार्यालय में काम करने के लिए बुला लिया। सारा मन्त्रि-मण्डल मुस्तफ़ा कमाल के असाधारण साहस; प्रशंसनीय पराक्रम, सराहनीय संगठन और सफल संचालन आदि गुणों के साथ-साथ उसके हृदय में प्रवाहित होने

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

वाले प्रजा-प्रेम प्रवाह से भी परिचित था। मुस्तफ़ा को वे लोग एक भयंकर व्यक्ति के रूप में देखते थे। मन्त्रि लोग जानते थे कि यह वीर युवक न जाने किस समय क्या कर बैठे, इसलिए वे उसे दिन-रात अपनी आँखों आगे ही रखना चाहते थे। परन्तु फिर भी मुस्तफ़ा राजनैतिक मामलों में दख़ल दिये बिना न मानता था।

इसी समय इटालियन फ़ौजों ने टर्की के अधीनस्थ मिश्र के ट्रिपोली पर आक्रमण कर दिया था। मुस्तफ़ा ने सोचा—कहीं इटली ट्रिपोली को अधिकृत करके मिश्र तक न आ पहुँचे, इसलिए वह चुपके ही मन्त्रिमण्डल के दफ़्तर से भाग निकला और लुकता-छिपता पुलिस और पहरे वालों की आँखों में धूल झोंकता ज्यों-त्यों कर मिश्र चला गया। वहाँ उसके पौरुष-पराक्रम की प्रशंसा तो पहले ही पहुँच चुकी थी, तुरन्त उसे वहाँ की एक सेना का मेजर बना कर युद्ध-क्षेत्र में भेज दिया गया। उधर टर्की सरकार की ओर से भेजा हुआ अनवर भी वहाँ पहुंच चुका था। मुस्तफ़ा अनवर से बहुत असन्तुष्ट था। उसका कारण था, अनवर का सुलतान के विरुद्ध षडयन्त्र रच के स्वार्थ-पूर्ण शासन स्थापित कर लेना। देश-प्रेमी, स्वाभिमानी मुस्तफ़ा को अनवर की दम्भ और दुरभिमान-भरी बातें छुरी के समान लगती थीं। उधर अनवर भी इस बात को अच्छी तरह अनुभव करता था, कि मेरे काले कारनामों के कारण मुस्तफ़ा मुझ से घृणा करता है। इस पारस्परिक वैमनस्य के कारण मुस्तफ़ा और अनवर दोनों ने ही युद्ध में विशेष योग नहीं दिया, जिसके परिणाम स्वरूप भरसक चेष्टा करने पर भी टर्किश सेनाओं को सफलता न मिली। उधर इटालियन फ़ौजों ने अन्य ईसाई शक्तियों के सहयोग से टर्किश सेना पर एक और प्रबल आक्रमण किया जिससे टर्की सेना के पैर उखड़ गए और उसे झख मार कर ट्रिपोली इटली को सौंप देना पड़ा।

मुस्तफ़ा जब मिश्र से लौट कर आया, तो उसने टर्की की

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

विचित्र ही दशा देखी। विदेशी मन्त्रिमण्डल से उसे जो आशंका थी, वह अब प्रत्यक्ष और कार्यरूप में परिणत हो चुकी थी। टर्की के भिन्न-भिन्न भागों को यूरोप की भिन्न-भिन्न शक्तियों ने हथिया लिया था। टर्की सरकार के साथ किसी की भी सहानुभूति न थी। वह बेचारी इस अप्रत्याशित विपद् में पड़कर घबराई फिर रही थी। उधर गेलीपोली प्रायःद्वीप में बुशाइर की क़िलेबन्दी तोड़ने के लिए बलगेरियनों के तोपों और हथौड़ों के भीषण प्रहार हो रहे थे। मुस्तफ़ा फ़ौरन एक फ़ौज लेकर बुशाइर में शत्रुओं से युद्ध करने पहुँच गया। वहाँ उसने अपने पराक्रम, साहस और युद्ध-कौशल से बलगेरियनों को क़रीब-क़रीब काबू में कर लिया था, कि उतने ही में उसे आदेश मिला—"सन्धि की चर्चा चल रही है, इसलिये युद्ध स्थगित कर दो।" मुस्तफ़ा अपने सैकड़ों वीरों को बलि चढ़ाकर सफलता देवी के सन्निकट पहुँच चुका था, अतएव वह युद्ध स्थगित करने के पक्ष में न था; परन्तु टर्की की स्वार्थी सरकार ने उसे सहायता प्रदान करने से हाथ सिकोड़ लिया जिससे उसे विवश होकर युद्ध बन्द कर देना पड़ा।

सन्धि का मसौदा तैयार हुआ जिसमें बालकान राष्ट्रों ने यह शर्त रक्खी कि कुस्तुन्तुनिया को छोड़कर समस्त टर्की यूरोप के भिन्न-भिन्न देशों को बाँट दिया जाय। अनवर ने जब बालकानों की ऐसी स्वार्थ-पूर्ण शर्त देखी, तब उसकी भी आँखें खुलीं और उसने अब विदेशी मन्त्रिमण्डल के राजनैतिक दाव-पेचों को समझा। अनवर ने इस शर्त के मानने से एकदम इनकार कर दिया। अन्त में बुशाइर का युद्ध पुनः आरम्भ हुआ, परन्तु इतने अवकाश में बलगेरियनों ने अपनी शक्ति अच्छे प्रकार सुसंगठित करली थी, उधर टर्की सन्धि-चर्चा के चक्रव्यूह में बिलकुल भूला हुआ था। फलतः असंगठित टर्की फ़ौज बलगेरियनों की सुदृढ़ सेना के मुक़ाबले में अकृतकार्य रही और बुशाइर पर बलगेरियनों का अधिकार

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

हो गया। इस प्रकार इस युद्ध में जीती हुई बाज़ी मुस्तफ़ा के हाथों से जाती रही। अन्त में विवश हो, अनवर को बालकान की शर्त स्वीकार करनी ही पड़ी।

इस समय मुस्तफ़ा कमाल कुस्तुन्तुनिया में बैठा टर्की का काया-पलट हो जाने पर विचार कर रहा था। वह सोचता था "बलि-चाह्यो वैकुण्ठ को प्रभु पठयो पाताल' वाली कहावत ही चरितार्थ हुई। उद्योग तो किया था टर्की में सुव्यवस्था पूर्ण संगठित शासन स्थापित करने के लिए, यहाँ हाथ से रही-सही स्वतन्त्रता भी छिन गई।" फिर भी मुस्तफ़ा निराश नहीं हुआ, वह अपने संगठन-कार्य में बराबर लगा रहा। टर्की को आज का दुर्दिन अनवर की स्वार्थपरता और अदूरदर्शिता के कारण ही देखना पड़ा था। अब भी वहाँ पर उसका ही बोलबाला था। अनवर ने तलात तथा जमाल को अपने साथ और सम्मिलित कर के टर्की पर कठोर शासन करना प्रारम्भ कर दिया। मुस्तफ़ा बराबर इनके अनैतिक कार्यों की आलोचना किया करता, इसलिए सिवा जमाल के अनवर और तलात दोनों ही उसे सशंक दृष्टि से देखते थे।

इन्हीं दिनों टर्की के भिन्न-भिन्न हिस्सेदारों में स्वार्थ-पूर्ण संघर्ष शुरू हो गया। वे परस्पर एक दूसरे का गला दबाने में व्यस्त थे। बलगेरियनों ने सरबिया और यूनान पर धावा बोल दिया था। ईसाइयों की आपसी सिर फुटौअल देखकर कमाल ने अनवर को इस अवसर से लाभ उठाने की बात सुझाई जो उसके ध्यान में उतर गई। उसने थोड़ी-सी फ़ौज जोड़-जुगाड़ कर 'आड्रियानोपिल' नामक शत्रुओं द्वारा अधिकृत टर्की के बहुत पुराने भाग पर आक्रमण कर दिया और उसे अपने अधिकार में ले लिया। अब अनवर को जीत का चस्का लग गया। उसने तुर्की सेना का नियम पूर्वक संगठन करना चाहा, और इस कार्य के लिए प्रशियन सेनानायक सैण्डर्स को आमन्त्रित किया। मुस्तफ़ा अनवर के

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

इस विचार से सहमत नहीं था। उसने समझाया कि शासन-सत्ता विदेशी मन्त्रिमण्डल के हाथों में सौंपने का तो यह दुष्परिणाम हुआ है कि समस्त टर्की पर विदेशियों का अधिकार होगया। इस वार सैन्य-शक्ति विदेशियों को सौंपकर एक भयंकर भूल दुहराना समझदारी का काम नहीं है। परन्तु अनवर ने मुस्तफ़ा की सलाह नहीं मानी और सैण्डर्स को बुला कर उसे कुस्तुन्तुनिया का प्रधान सेना नायक बना दिया। इसके विरोध स्वरूप मुस्तफ़ा कुस्तुन्तुनिया से सोफ़िया चला गया।

इस समय संसार में आये दिन नये-नये परिवर्त्तन हो रहे थे। सन् १९१४ का यूरोपीय महायुद्ध छिड़ चुका था। प्रत्येक राष्ट्र किसी न किसी पक्ष का हिमायती बन कर उसमें सम्मिलित होरहा था। अनवर को भी उस युद्ध में रूस के विरुद्ध युद्ध करने के लिये अपनी सेना लेकर काकेशस जाना पड़ा। अनवर की अनुपस्थिति में हाकी पाशा ने उसका कार्य-भार सँभाला। हाकी पाशा के विचार मुस्तफ़ा से बहुत कुछ मिलते थे। वह स्वयं वीर था इसलिये वीर-पूजा के महत्त्व को भली भाँति समझता था। मुस्तफ़ा के विश्व-विख्यात वीर-वृत्त उसने पहले ही सुन रक्खे थे। इस समय शासन सूत्र अपने हाथ में आते ही हाकी पाशा ने प्रशियन सेनापति सैण्डर्स से सिफ़ारिश करके मुस्तफ़ा को गैली पोली प्रायद्वीप के दक्षिण की आधी सेना का अध्यक्ष बनवा दिया। अब तक सैण्डर्स की धारणा थी कि टर्की में सभी साधारण सैनिक हैं, परन्तु मुस्तफ़ा ने उसकी धारणा को मिथ्या कर दिया। उसे कमाल का कायल होना पड़ा। मुस्तफ़ा ही पहला टर्किश वीर था, जिसके पौरुष-पराक्रम से सैण्डर्स प्रभावित हुआ।

सैण्डर्स मुस्तफ़ा के साहसपूर्ण सैन्य-सञ्चालन को देख कर उसे एक शानदार अफ़सर और प्रभावशाली नेता कहा करता था। परन्तु मुस्तफ़ा को विदेशियों से स्वाभाविक घृणा थी। इस समय

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

टर्की पर अँग्रेज़ों द्वारा आक्रमण किये जाने की अफ़वाह गर्म थी। परन्तु अनवर ने न जाने क्या सोचकर सैण्डर्स को सूचित किया कि 'मुस्तफ़ा को गैली पोली से हटाकर तुरन्त दूसरी जगह भेज दिया जाय।' सैण्डर्स इस बात को जानता था कि मुस्तफ़ा और अनवर में अनबन रहती है। साथ ही उसे यह भी ज्ञात था कि मुस्तफ़ा को अनवर की आज्ञा बहुत असह्य होती है। इसलिए उसने बड़ी चतुराई से सब बातें समझा कर मुस्तफ़ा को माई-डोस की उन्नीसवीं टुकड़ी का अध्यक्ष बना दिया। इस तरह अनवर की आज्ञा का पालन भी हो गया और मुस्तफ़ा को उससे असन्तुष्ट होने का अवसर भी न आया।

आख़िर टर्की पर अँगरेज़ों का चिर आशंकित आक्रमण हो ही गया। उन्होंने गैलीपोली के उत्तरी भाग में बुलाइर पर हमला कर दिया। मुस्तफ़ा बिना किसी विशेष तैयारी के तुरन्त शत्रुओं के समक्ष जा डटा और उनसे मोरचा लेने लगा। उधर अँगरेज़ी पलटन टिड्डी-दल की भाँति बढ़ी चली आ रही थी, इधर टर्किश-फ़ौजों के एकत्र होने का कोई उचित प्रबन्ध नहीं था। फिर भी मुस्तफ़ा उन मुट्ठी-भर सैनिकों के साहाय्य से शत्रु-सेना को आगे बढ़ने से रोकने की भरसक कोशिश कर रहा था। कमाल के भरपूर रोक-थाम करने पर भी शत्रु-सेना "चैनक बाइर" तक घुस आई। अब तो मुस्तफ़ा को बड़ी चिन्ता हुई। यहाँ तक शत्रुओं का घुस आना टर्की के लिए ख़तरे से ख़ाली न था। कारण कि यहाँ से सीधा और निरापद मार्ग "डाईनीज़" को गया था, और यहाँ पर कुस्तु-न्तुनिया पर सीधा आक्रमण करने की सुविधा थी। मुस्तफ़ा को यदि पहले ही से पर्याप्त सेना सहित आगे बढ़कर शत्रु-सेना का मुक़ा-बला करने का अवसर दिया जाता, तो वह अँगरेज़ी फ़ौज को यहाँ तक बढ़ने ही क्यों देता। फिर भी उसने साहस नहीं छोड़ा। मुस्तफ़ा ने उसी समय टर्की के प्रधान सेनानायक को फ़ोन किया कि

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

मुझे सारी फ़ौजों के साथ सब से आगे लड़ने की आज्ञा दी जाय। उधर सैण्डर्स तो मुस्तफ़ा पर भरोसा करता ही था, उसने उत्तर में कमाल की इच्छानुसार उसे लड़ने की आज्ञा दे दी तथा दूसरी फ़ौज भी मुस्तफ़ा की अधीनता में युद्ध करने के लिए मुहिम पर भेज दी।

मुस्तफ़ा अब बड़े साहस, पराक्रम और रणकौशल द्वारा शत्रुओं को पीछे हटाने का प्रयत्न करने लगा और धीरे-धीरे उसे अपने उद्योग में सफलता के चिन्ह भी दिखाई देने लगे। एक जर्मन जनरल जो मुस्तफ़ा के समीप ही दूसरी टुकड़ी का नायक बनकर युद्ध कर रहा था, मुस्तफ़ा के युद्ध-कौशल और प्रचण्ड पराक्रम को देख दाँतों तले उँगली दबाता था। मुस्तफ़ा बड़ा दूरदर्शी और कार्यकुशल अफ़सर है, यह वाक्य अनायास ही उस जर्मन अधिकारी के मुँह से निकल पड़ता था। वास्तव में शत्रुओं को परास्त करने की जो भी युक्ति मुस्तफ़ा सोचता उसमें उसे आशातीत सफलता मिलती थी। अँगरेज़ी फ़ौज में न्यूज़ीलेण्ड, आस्ट्रेलिया आदि बहुत-सी शक्तियाँ सम्मिलित थीं, और इधर टर्की की सेना थी, सो भी असंगठित और अधूरी, फिर भी वीर मुस्तफ़ा साहस पूर्वक मुक़ाबले में डटा हुआ था। मुस्तफ़ा को अँगरेज़ी सेना की बहुत-सी निर्बलताएँ मालूम हो गई थीं, अतः उसने उन्हें दृष्टि में रखकर शत्रुओं के मर्म स्थान पर ही प्रहार करना प्रारम्भ किया। प्रत्युत्पन्नमति मुस्तफ़ा की यह सामयिक सूझ बहुत ही सच्ची और सफल सिद्ध हुई। उधर उसने अपने वीरता पूर्ण ओजस्वी भाषणों द्वारा सैनिकों को प्रोत्साहित करना शुरू किया, जिसके फलस्वरूप सैनिकों के शिथिल शरीरों में उत्साह की बिजली कड़कने लगी। वे प्राणों का मोह परित्याग कर शत्रुओं पर पिल पड़े और उन्होंने भीषण मारकाट मचा दी। अन्त में टर्की के मुट्ठी-भर वीर सिपाहियों ने अँगरेज़ी फ़ौज की भारी भीड़ को भेड़ों की भाँति खदेड़ कर टर्की की विजय-पताका फहरा दी।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

इस युद्ध में विजय प्राप्त करने के उपलक्ष्य में मुस्तफ़ा को 'पाशा' की उपाधि से अलंकृत किया गया। उधर कमाल का तख़ल्लुस उसे विद्यार्थी अवस्था में ही मिल चुका था। इन सब को मिलाकर अब मुस्तफ़ा का पूरा नाम "मुस्तफ़ा कमाल पाशा" हो गया। मुस्तफ़ा कुस्तुन्तुनिया की आबाल वृद्ध जनता का प्रेमपात्र बन गया था। युद्ध-क्षेत्र से लौटने पर वहाँ की जनता ने आभार-पूर्ण उल्लसित हृदय से मुस्तफ़ा का स्वागत-सत्कार किया। वह घर-घर आदर और गर्व के साथ अपनाया गया। वस्तुतः इस विजय ने मुस्तफ़ा की यशःपताका में चार चाँद लगा दिये थे।

उधर अनवर अब टर्की का स्वयं-सिद्ध सर्वाधिकारी बन बैठा था। परन्तु प्रजा के हृदय में उसकी अपेक्षा मुस्तफ़ा का ही आसन ऊँचा था। इतना ही नहीं, जनता में गुप्त रूप से अनवर के विरुद्ध अनेक षडयन्त्रों की सृष्टि रची जा रही थी। ऐसी प्रतिकूल परिस्थिति देख अनवर को भय हुआ कि कहीं मुस्तफ़ा मेरे विरुद्ध विद्रोह न खड़ा कर दे, इसलिए उसने मुस्तफ़ा को कुस्तुन्तुनिया से अलग ही अलग रखने के विचार से काकेशस की रक्षा के लिए रूस के साथ युद्ध में अटका दिया। अनवर की सरकार मुस्तफ़ा को हृदय से बिलकुल न चाहती थी। उसकी इच्छा थी, कि किसी युद्ध में मुस्तफ़ा काम आ जाय तो अच्छा है। इसीलिए युद्ध-क्षेत्र से मुस्तफ़ा जिस चीज़ की सहायता के लिए ख़बर भेजता, प्रायः उसकी माँगों का उत्तर नकार ही में दिया जाता। परन्तु टर्की का भाग्य मुस्तफ़ा के भाग्य के साथ मिलकर उसकी सहायता कर रहा था। उसके पौरुष-पराक्रम उसका साथ दे रहे थे। मुस्तफ़ा कमाल ने अपने ही पैरों पर खड़ा होकर, अपने असाधारण साहस और अनवरत अध्यवसाय द्वारा इस युद्ध में भी रूस जैसी प्रबल शक्ति पर विजय प्राप्त की।

वीरवर मुस्तफ़ा अभी इस युद्ध से भलीभाँति निश्चिन्त भी न

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

हो पाया था कि उसे अँग्रेजों द्वारा सीरिया पर आक्रमण किये जाने की सूचना मिली। खबर पाते ही मुस्तफ़ा काकेशस में बहुत जल्दी शान्ति और सुरक्षा की सुव्यवस्था करके तुरन्त कुस्तुन्तुनिया लौट आया। यहाँ से उसे सीरिया के समर-क्षेत्र में जाना पड़ा। मुस्तफ़ा की सेना हारी-थकी तो थी ही; दूसरे उसे टर्की सरकार की उदासीनता पूर्ण निन्दनीय नीति के कारण पीछे से कुछ भी सहायता-सामग्री न मिल सकी। निदान टर्की की थकी-माँदी और समर-सामग्री शून्य फ़ौजें अँगरेज़ों की ताज़ी एवं सुसज्जित सेना के आगे न टिक सकीं। फलतः सीरिया पर अँगरेज़ों का अधिकार होगया। इस तरह टर्की-सरकार ने एक प्रकार से अपने आप ही अपने पैरों में कुल्हाड़ी मारी। अब की बार जब मुस्तफ़ा लौट कर कुस्तुन्तुनिया पहुँचा, तो वहाँ उसे नया ही आलम नज़र आया। सब नेताओं का जोश ठण्डा पड़ गया था, और उन्हें अब टर्की के उद्धार की लेश भी आशा नहीं रही थी। वस्तुतः अब वहाँ केवल मुस्तफ़ा कमाल पाशा ही एक व्यक्ति था, जिसने साहस को हाथ से नहीं जाने दिया। उसका कहना था कि अब भी यदि एकता और धैर्य से काम लिया जाय तो टर्की की रक्षा हो सकती है।

इधर जब से यूनानियों ने स्मरना पर आधिपत्य जमाया, तब से टर्की की जनता में राष्ट्रिय आन्दोलन की लहरें विद्युद्वेग से फैल गई थीं। यूनानी मल्लाहों के क्रूर व्यवहार ने टर्की वालों का हताश हृदय फिर देश-प्रेम के भव्य भावों से परिप्लावित कर दिया था। धीरे-धीरे आन्दोलन होता रहा और अन्त में सन् १९१९ ई० में इसी आन्दोलन ने मुस्तफ़ा कमाल के नेतृत्व में समसौन नामक स्थान पर भीषण रूप धारण किया। "टर्की तुर्कों का है" इस मोटो से अंकित पताकाएँ लेकर विद्रोही-दल मुस्तफ़ा के अधिनायकत्व में स्वातन्त्र्य-संग्राम के लिए समर-क्षेत्र में उतर आया। मुस्तफ़ा ने बिना अधिक आगा-पीछा सोचे सारा उत्तर-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

दायित्व अपने ऊपर लेकर कार्यारम्भ कर दिया। जिस कार्य को पूरा करने में प्रधान मन्त्री इस्मत पाशा सर्वथा असफल रहा, उसे ही कमाल पाशा ने अपने विख्यात और विशाल व्यक्तित्व के बलबूते पर कर डालने का व्रत धारण किया था। वह तन-मन-धन से देश-प्रेम के दीवाने विप्लवकारी वीरों की सेना संगठित करने में जुट पड़ा। युद्ध का संचालन और सैनिक तथा अन्य समर-सामग्री का संग्रह, दोनों काम अकेले मुस्तफ़ा को करने पड़ते थे। इन दिनों मुस्तफ़ा को खाने-पीने या क्षणभर विश्राम करने का भी अवकाश न था। वह सारी टर्की में इधर से उधर घूम रहा था। उसका खाना-पीना, सोना, पूजा-पाठ सब काम घोड़े की पीठ पर ही होते थे। वह कभी अंगोरा की विकट परिस्थिति सुलझाने जाता, तो कभी निराश सैनिकों में अपने जादूभरे भाषणों द्वारा उत्साह और साहस का संचार करता। अब टर्की का आबाल वृद्ध इस वीर के नाम और काम से पूर्ण परिचित हो गया था।

इस बार शत्रुओं से बेढब मुक़ाबला था। मुस्तफ़ा चाहता था, कि उसे डिक्टेटर के सम्पूर्ण अधिकार प्राप्त हो जायँ, जिससे फिर उसे युद्ध की विशेष परिस्थितियों में कोई विशेष कार्य करने के लिए उच्च अधिकारियों की आज्ञा प्राप्त करने में व्यर्थ समय नष्ट न करना पड़े। क्योंकि युद्ध-क्षेत्र में अवसर चूकते ही क्षण-भर में पासा पलट जाया करता है। टर्की की उच्च सत्ता पहले तो उसकी यह इच्छा पूरी करने में कुछ हिचकिचाई, परन्तु ऐसा किए बिना टर्की की रक्षा होनी असम्भव थी, निदान उसे मुस्तफ़ा को सर्वाधिकारी का पद प्रदान करना ही पड़ा।

अब क्या था, टर्की का डिक्टेटर मुस्तफ़ा कमालपाशा एक सुदृढ़ सेना लेकर यूनानी सेना के सम्मुख जा डटा। घमासान युद्ध होने लगा। कर्मवीर कमाल सैनिकों के हृदयों में साहस सञ्चार करता हुआ शत्रुओं के दाँत खट्टे करने लगा। समरक्षेत्र में मुस्तफ़ा का

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

युद्ध-संचालन कार्य सुव्यवस्थित था, इसलिए वह और अधिक सेना एकत्र करने के लिए अँगोरा चला गया। मुस्तफ़ा ने हाल ही में वहाँ के निवासियों के जान-माल की रक्षा का सुन्दर और सुदृढ़ प्रबन्ध कर दिया था, इसलिए वहाँ की जनता ने प्रसन्न होकर उसे ग़ाज़ी* की उपाधि से विभूषित किया था, इसके अतिरिक्त वह कमालपाशा के संकेत मात्र पर जन-धन निछावर करने को भी तैयार थी। अंगोरा ही क्यों इटली-भर की जनता ने अब मुस्तफ़ा को असाधारण शक्तिशाली तथा अनन्य देश-भक्त जान और मान लिया था। विदेशों से भी अब उसके पास बधाई के अनेक पत्र आते थे, जिनके कारण उसका हृदय एक नवीन उत्साह से उल्लसित हो उठता था। अंगोरा में ग़ाज़ी मुस्तफ़ा कमालपाशा ने "राष्ट्रिय-रक्षा समिति" के डिक्टेटर की हैसियत से एक सुदृढ़ सेना संगठित की। मुस्तफ़ा के इस असाधारण अभ्युदय को देख उसके द्वेषी जलते थे। उन्होंने मुस्तफ़ा के इस कार्य में अनेक विषम बाधाएँ अटकाईं, परन्तु वह उन सभी संकटों का सामना करता हुआ अपने संगठन-कार्य में जुटा ही रहा। अन्त में वह वीर अपने कार्य में सफल हुआ और अंगोरा से एक शक्तिशालिनी सेना लेकर १९२२ के अगस्त मास में वह पुनः युद्ध-क्षेत्र में पहुँच गया।

अपने वीर नायक को इतनी सबल सेना सहित आया देख टर्किश सेना की प्रसन्नता का पारावार न रहा। मारे हर्ष के उसका उत्साह द्विगुणित हो गया। अब क्या था, मुस्तफ़ा ने यूनानियों की 'अफ़ियन करहिसार' नामक एक सुदृढ़ क़िलेबन्दी पर हमला कर दिया। घोर घमासान युद्ध हुआ, जिसमें मुस्तफ़ा के वीर योद्धा कट-कट कर लड़े। मुस्तफ़ा अपनी सेना के किसी भाग को ज़रा भी शिथिल देखता तो दौड़कर तुरन्त वहाँ पहुँच जाता। कमालपाशा

*ग़ाज़ी = विधर्मियों का विध्वंसक।

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

की वीर-हुंकार सुनते ही सैनिकों में बिजली-सी दौड़ जाती और फिर वे आँखें मूँद कर शत्रुओं पर टूट पड़ते। अंत में विजय श्री टर्की सेना को ही प्राप्त हुई। टर्की में से यूनानियों को खदेड़ कर मुस्तफ़ा ने अपने ग़ाज़ी पद को चरितार्थ कर दिया।

अब टर्की स्वच्छन्द था। परन्तु कुछ काल पश्चात् ही मुस्तफ़ा ने सुना कि यूनानी पुनः टर्की पर आक्रमण करने की इच्छा से संगठन कर रहे हैं तथा इस बार अँग्रेज़ भी उनकी सहायता करेंगे। अभी वह इस समाचार के सम्बन्ध में सत्यासत्य का निर्णय भी नहीं कर पाया था, कि यूनानी फ़ौजें थ्रेस नामक स्थान पर आकर एकत्र हो गईं, और उधर अँगरेज़ों ने तुर्की सेना के आक्रमण करने का एक मुख्य मार्ग रोक लिया। अब मुस्तफ़ा बड़ी अड़चन में पड़ गया, परन्तु उसका भाग्य उस समय भी उसके अनुकूल था। टर्की, यूनान और बरतानिया तीनों का भीषण संघर्ष छिड़ने ही को था, कि फ्रांस के प्रतिनिधि 'मोशिये फ्रेंकलिन बायलिन' ने बीच में पड़कर टर्की और ब्रिटेन दोनों को समझाया कि अगर तुम दोनों लड़ोगे, तो संसार व्यापी एक भीषण संग्राम छिड़ जायगा! इसलिए उचित यही है कि परस्पर समझौता कर लिया जाय।

आखिर समझौता हुआ और उसके अनुसार थ्रेस से यूनानी सेनाओं को तो हट जाना ही पड़ा, साथ ही अब टर्की को यूरोप में टर्की वालों का ही स्वतन्त्र राष्ट्र घोषित कर दिया गया। यही मुस्तफ़ा चाहता भी था। मुस्तफ़ा के ही उद्योग और अध्यवसाय से विदेशियों के पंजे में गया हुआ टर्की पुनः स्वतन्त्र वायुमण्डल में साँस लेने लगा। स्मरना में मुस्तफ़ा की जो विजय हुई, वह तो नाम मात्र की विजय थी। सच्ची विजय तो मुस्तफ़ा की अब हुई थी, जिससे टर्की का भाग्यचक्र एक दम पलट गया।

यद्यपि अब भी अंगोरा में शत्रुओं की थोड़ी-बहुत फ़ौजें बची

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

हुई थीं, परन्तु उनकी शक्ति टर्की की शक्ति के सामने नगण्य थी। मुस्तफ़ा उसकी कुछ भी परवा न कर देश के सुधार-कार्यों में संलग्न हो गया। टर्की की 'सल्तनत खलीफ़ा' के तो वह शुरू से ही खिलाफ़ था। वह जानता था, कि खलीफ़ा के प्रधान होने से ही टर्की को व्यर्थ की अनेक आपत्तियाँ उठानी पड़ती हैं। इसलिए इस सल्तनत को सदा-सर्वदा के लिए उखाड़ फेंकने के उद्देश्य से मुस्तफ़ा ने एक विराट् सार्वजनिक सभा का आयोजन किया। इस सभा में मुस्तफ़ा के विचार का विरोध करने वाले बहुत थे, परन्तु कमाल के ओज-पूर्ण और युक्ति-युक्त भाषण ने विरोधी दल को भी प्रभावित किया और वे धीरे-धीरे उसके पक्ष में आने लगे। एक बार तो भाषण देते हुए मुस्तफा ने स्पष्ट घोषित कर दिया—"सज्जनो, औत्तमान सुलतान ने बलपूर्वक टर्की को अपने अधिकार में किया था। आज बलपूर्वक ही हमने उसे वापस ले लिया। अब सल्तनत को खलीफ़ा से एक दम अलग रक्खा जायगा, चाहे कोई स्वीकार करे अथवा न करे, परन्तु ऐसा होकर ही रहेगा, और जो कोई इस कार्य में रोड़ा अटकावेगा, उसका सर पृथ्वी पर लुढ़कता दिखाई देगा।" इस सभा की लम्बी बैठक में बहुत वाद-विवाद के बाद मुस्तफ़ा की विजय हुई और उसका प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया गया। अब कमालपाशा को समस्त टर्की की संगठित सभा ने एक स्वर से टर्की का उद्धारक और सर्वाधिकारी घोषित कर दिया।

इसके पश्चात् टर्की को सभ्यता की दौड़ में दूसरे देशों के समकक्ष खड़ा करने के लिए मुस्तफा ने वहाँ अनेक सुधार करने प्रारम्भ किए। सब से प्रथम तो वहाँ की भीरु जनता को निर्भय और वीर बनाने के उद्देश्य से उसने जगह-जगह जोशीले भाषण दिए। पर्दे की प्रथा मिटाकर स्त्रियों को भी देशोन्नति के कार्यों में समान भाग लेने के लिए मुस्तफ़ा ने प्रबल आन्दोलन किया, जिसके

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

फलस्वरूप आज वहाँ की स्त्रियाँ बुर्के का बहिष्कार कर निर्भयता पूर्वक सार्वजनिक क्षेत्रों में काम करती दिखाई देती हैं। एक सबसे बड़ा सुधार मुस्तफ़ा ने धर्म में भी किया। उसने धर्म को उसी दृष्टि से देखा जिस से दूसरे देशों के शासक उसे देखते हैं। अर्थात् धर्म के नाम पर प्रचलित अनेक अंध विश्वासों को उसने जनता के हृदयों में से निकाल फेंका।

सर्व साधारण की सुविधाओं के लिए भी स्वतन्त्र टर्की खूब सजाया जाने लगा। पक्की सड़कें, आदर्श नगर, सुसज्जित विशाल बाज़ार, घर-घर में जल-कल, प्रकाश के लिए जगमगाते हुए विद्युद्दीप, घण्टाघर, पार्क आदि बहुत-से कार्य इसी कर्मवीर की दूरदर्शिता के मधुर परिणाम हैं। कमालपाशा ने अस्तव्यस्त और मरणासन्न टर्की को एकदम नवीन तथा प्रगतिशील स्वतन्त्र देश बनाकर उसे उन्नति के उच्चतम शिखर पर पहुँचा दिया है। कमालपाशा का जीवन सच्चरित्रता, स्वाभिमान, देश-प्रेम और निःस्वार्थ सेवा-भाव से ओतप्रोत है।

मुस्तफ़ा कमालपाशा अपनी प्रजातन्त्र शासन-समिति का विशाल एवं विमल व्यक्तित्व सम्पन्न साहसी और उत्साही डिक्टेटर था। देश-प्रेम-पूर्ण उष्ण रक्त उसकी रग-रग में प्रवाहित होता था। वह टर्की के मुसलमानों का पथ-प्रदर्शक और इस्लाम धर्म का संरक्षक था। जिस गौरवपूर्ण सर्वाधिकारी के पद पर वह सुशोभित था, वस्तुतः वह उसका सच्चा अधिकारी था। राष्ट्र का एकमात्र सूत्रधार मुस्तफ़ा पशुबल द्वारा प्रजाजनों के शरीरों पर नहीं, प्रत्युत प्रेमपूर्ण व्यवहार द्वारा उनके हृदयों पर शासन करता था। प्रजा के हितार्थ प्रचारित अनेक लोकोपयोगी कार्यों के साथ-साथ मुस्तफ़ा का नाम भी विश्व की विमल विभूतियों के अमर इतिहास में अंकित रहेगा। मुस्तफ़ा बड़ा इसलिए नहीं है कि उसने बड़े-बड़े युद्धों में विजय प्राप्त की, वह इसलिए भी आदरणीय नहीं है, कि

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अनेक सभा-संस्थाओं—यहाँ तक कि टर्की की राष्ट्र-सभा का भी प्रधान रहा; प्रत्युत मुस्तफ़ा इसलिए बड़ा है कि उसने पराधीनता-पाश में जकड़े हुए अपमानित, लाञ्छित और मृत प्रायः टर्की को स्वाभिमान-सुधा पिला तथा उसके जीवन में स्फूर्ति और शक्ति प्रदान कर संसार के शक्तिशाली राष्ट्रों के बराबर खड़े होने योग्य बना दिया है।

मुस्तफ़ा दृढ़ निश्चयी और बड़ा दूरदर्शी था। डिक्टेटर के पद पर प्रतिष्ठित रहते हुए भी उसके आगे विघ्नबाधाओं की विकट चट्टानें खड़ी की गई। उसके विरुद्ध अविश्वास के प्रस्ताव पास हुए, यहाँ तक कि उसकी हत्या के भी प्रयत्न किए गये; परन्तु मुस्तफ़ा के सत्य, धैर्य, साहस और सर्वोपरि विशाल व्यक्तित्व के आगे विरोधियों की कमीनी कार्यवाहियाँ उसी प्रकार स्वयं छिन्न-भिन्न हो गईं, जिस प्रकार वायु-वेग से सघन मेघमालाएँ क्षणभर में विलीन हो जाती हैं। टर्की का शासन-सूत्र हाथ में लेते ही सर्व प्रथम मुस्तफ़ा ने उन बातों के जानने का प्रयत्न किया, जो उससे सर्वथा छिपी हुई थीं। उनमें मुस्तफ़ा के विरुद्ध अनेक षड्यन्त्र भी थे जिनको उसने जहाँ का तहाँ दबा दिया। जनता के अधिक से अधिक सम्पर्क में आने के लिए मुस्तफ़ा समस्त टर्की का दौरा करने लगा। इन दौरों में वह छोटे आदमियों से ही अधिक मिलता था। जगह-जगह ग़रीबों की करुण-कथाएँ सुन कर उनके दुःख दूर करने का प्रयत्न करना मुस्तफ़ा ने अपना प्रधान कर्त्तव्य बना लिया था।

बालकों की शिक्षा-दीक्षा के लिए भी मुस्तफ़ा ने समुचित प्रबन्ध किया। टर्की के बालक जब तक कोई काम सीख कर अपनी आजीविका अर्जन करने योग्य नहीं बन जाते; तब तक उन्हें अनिवार्य रूप से शिक्षा प्राप्त करनी पड़ती है। टर्की की आर्थिक अवस्था सुधारने के लिए भी कमालपाशा ने पूरा प्रयत्न किया।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

इस सिलसिले में उसने एक बार भाषण देते हुए कहा था—"आप लोगों को कुछ समय के लिए राजनीति को बिलकुल भूल जाना चाहिये, क्योंकि इस कार्य के लिए तो मैं अभी बहुत दिनों तक जीवित हूँ। आप लोगों को तो इस समय व्यापार और कृषिकार्य में संलग्न होने की आवश्यकता है।" मुस्तफ़ा के ऐसे भाषणों का ही परिणाम है कि आज टर्की संसार के उन प्रगतिशील राष्ट्रों में से एक है जो अपनी शक्ति और सभ्यता का अभिमान रखते हैं।

मुस्तफ़ा अपने अन्तिम दिनों में शाही सम्मान सहित, चानकाया नामक गाँव के एक भवन में रहता था। अपनी मृत्यु से कुछ दिनों पूर्व उसने एक भाषण में कहा था—"मेरे देश निवासियो, मुझे पूरा विश्वास है, हमारा राष्ट्र आत्मिक बल द्वारा संसार में क्रान्ति करता रहेगा। जब तक तुम में अपने आप खड़े होकर कार्य करने की शक्ति नहीं आ जाती, मैं सर्वात्मना बराबर तुम्हारा नेतृत्व करता रहूँगा।" कितना स्वाभिमान और कैसा दृढ़ विश्वास मुस्तफ़ा के इन शब्दों में भरा हुआ है!

ग़ाज़ी मुस्तफ़ा कमाल पाशा उन व्यक्तियों में से था, जिनका भविष्य प्रतिक्षण उनके अपने हाथ में रहता है। दुःख की बात है कि टर्की के इस नवयुग प्रवर्त्तक नेता का, जिसने आजीवन अविवाहित रह कर अपना जीवन देश के लिए अर्पण कर दिया, अभी एक वर्ष बीता, स्वर्गवास हो गया!

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

महात्मा टालस्टाय

आज से लगभग सौ वर्ष पहले की घटना है, रूस देशीय 'यास नाम या लिताना" नगर में पाँच वर्ष का एक बालक अपने भाई-बहनों के साथ खेल रहा था। खेल का नाम था, "चींटियों का भाई-चारा।" इस खेल की कल्पना और इसका नामकरण आदि सब कुछ उस पंच वर्षीय बालक ने ही किए थे। एक दिन इस बालक के बड़े भाई ने इससे कहा था, कि मुझे ऐसी युक्ति मालूम है, जिसके द्वारा मनुष्य दुनिया के दुःखों से छुटकारा पा सकता है। सांसारिक द्वंद्व उसके पास भी नहीं फटक सकते और वह मनुष्य मात्र में चींटियों का-सा भाई-चारा स्थापित कर सकता है। भाई का उक्त कथन बालक के हृदय में बैठ गया, और उसने उसी के आधार पर "चींटियों का भाई-चारा" नामक खेल की सृष्टि रच डाली।

बालक इस खेल को बड़े उत्साह-पूर्वक खेलता था। घर में रक्खी हुई किसी मेज़ या कुर्सी के चारों ओर तख्ते-पटरे या बक्स-पेटियाँ रख कर ऊपर से एक कपड़ा ढाँक दिया जाता और उसका नाम रक्खा जाता 'चींटियों का बिल'। बिल में जिस तरह चींटियाँ प्रेम पूर्वक मिलजुल कर रहती हैं, उसी तरह वह बालक भी अपने भाई-बहनों को लेकर उस बिल में प्रेम पूर्वक चिपट-सिमट कर

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

बैठ जाता। बस इतना ही इस खेल का 'प्लाट' था। बालक इस खेल में अपार आनन्द अनुभव करता तथा भाई-बहनों के साथ प्रेम और भाई-चारे के भाव का भी। इसी समय से इसके हृदय में प्रेम, सहानुभूति और भ्रातृत्व की भावना भर गई। आगे चलकर इसके इन विचारों ने बढ़ते-बढ़ते विमल विश्वबन्धुत्व और प्रबल विश्वप्रेम का रूप धारण किया, जिसके फलस्वरूप इस महापुरुष ने अपना समस्त जीवन ही दीन-दुखियों के दुःख निवारणार्थ उत्सर्ग कर दिया। पाठक जानना चाहते होंगे कि यह बालक कौन था? यह महात्मा टालस्टाय था,—वही टालस्टाय जिसे हमारे हृदय-सम्राट् महात्मा गान्धी भी अपना अन्यतम गुरु मानते हैं।

ऊपर हमने जिस समय की घटना का उल्लेख किया है, उस समय का रूस आज का-सा रूस न था। उस समय वहाँ की दशा वर्त्तमान भारत की दशा से भी निकृष्टतर एवं शोचनीय थी। वहाँ के किसान पूरे सालभर अपने खेतों में कठिन परिश्रम करते, फिर भी बेचारों को न तो भरपेट खाने को दाने ही नसीब होते थे और न तन ढाँकने को वस्त्र ही। उनकी गाढ़ी कमाई का अधिकांश ही क्यों सर्वांश जालिम ज़मीदारों, मक्कार महाजनों, अत्याचारी अधिकारियों और खुदगरज़ गवर्नमेण्ट के पेट में चला जाता था। बेचारी प्रजा भाँति-भाँति के टैक्सों के बोझ से दबी जा रही थी। राजकीय करों की भरमार से उसके प्राण निकले जा रहे थे। अगर कोई ज़रा भी इस अन्याय के विरुद्ध सर उठाता तो उसे वहीं कुचल दिया जाता था।

उस समय रूस का राजा 'ज़ार' कहलाता था। ज़ारशाही शासन के न कोई निश्चित नियम थे, और न क़लमबन्द क़ायदे क़ानून। वह शासन-कार्य में निखिल तन्त्र स्वतन्त्र था। जो उसके मुँह से निकल गया वही क़ानून समझा जाता था। जब खुद राजा के यहाँ ऐसी अन्धेरगर्दी थी, तब उसके अधीनस्थ अधिकारियों के

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अत्याचारों और ज़मींदारों के ज़ुल्मों की क्या दशा होगी, इसका अनुमान सहृदय-समाज सहज ही में कर सकता है। ज़मींदार लोग किसानों को क्रीतदास समझते थे। वह यदि अपनी ज़मीन-जायदाद किसी दूसरे के हाथों बेचते, तो उसके साथ ही उस पर काश्त करने वाले किसानों या बसने वाले प्रजाजनों को भी बेच डालते थे। जिसका परिणाम यह होता था कि उन लोगों पर चाहे जितने ज़ुल्म ढाए जायँ, चाहे जैसे अत्याचार किए जायँ परन्तु वे उस स्थान को छोड़ कर अन्यत्र नहीं जा सकते थे। इससे भी गई-बीती वहाँ गुलामी की प्रथा प्रचलित थी। जिस प्रकार हम अपनी आवश्यकताओं के पूर्त्यर्थ अथवा व्यापार के लिए घोड़ी-घोड़ों या गाय-बैलों की ख़रीद-फ़रोख़्त करते हैं, उसी भाँति वहाँ मनुष्यों का क्रय-विक्रय किया जाता था। इन खरीदे हुए गुलामों को मालिक के आज्ञानुसार भला या बुरा प्रत्येक काम करना पड़ता था। कभी-कभी तो किसी निर्दय स्वामी द्वारा ऐसे क्रीतदासों को क़त्ल भी कर दिया जाता था, फिर वह भले ही किसी कारणवश होता अथवा मनोविनोदार्थ ही। ऐसे लोगों के इस असानुषिक कार्य में किसी को हस्तक्षेप करने का अधिकार न था। यदि कोई दयालु हृदय इन दुखियों की दयनीय दशा देख उससे सहानुभूति प्रदर्शित करता, तो वह बेचारा बेमौत मारा जाता। ऐसे लोगों को नरक सदृश जेलों में ठेल देना तो साधारण बात थी। अभिप्राय यह कि रूस की निरीह प्रजा उन दिनों असंख्य अमानुषिक अत्याचारों का केन्द्र बनी हुई त्राहि-त्राहि पुकार रही थी।

आख़िर दीन-दुखियों का करुणक्रन्दन परम कारुणिक परमात्मा ने सुना और उसने रूस का उद्धार करने के लिए वहाँ अनेक महापुरुषों को जन्म दिया। इन्हीं विश्व विश्रुत विमल विभूतियों में से एक महात्मा टालस्टाय भी थे।

टालस्टाय के पूर्वज धनी, प्रतिष्ठित और शिक्षित थे। उनका

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

रूस के राज-परिवार में भी बहुत मान था। इनको बादशाह की ओर से 'काउण्ट' की सम्मानपूर्ण उपाधि प्रदान की गई थी। यह उपाधि गिने-चुने प्रतिष्ठित व्यक्तियों को ही दी जाती थी। टालस्टाय के जिस पूर्वज ने सर्व प्रथम यह उपाधि उपलब्ध की उसका नाम था 'पीटर टालस्टाय' (टालस्टाय इनकी वंश या जाति सूचक उपाधि है) । इन्हीं काउण्ट पीटर के वंश में अठारहवीं सदी में आकर बड़े ही विद्वान् सदाचारी, त्यागी और दयालु 'काउण्ट निकोलस टालस्टाय' हुए । निकोलस अत्यन्त उद्यमी उत्साही और वीर भी थे। सोलह वर्ष की आयु में ही इन्होंने रूसी सेना में भर्ती होकर फ्रांसीसियों से युद्ध किया और वहाँ यह शत्रुओं द्वारा पकड़कर बन्दी बना लिए गए। जैसे ही फ्रांस के बन्दीगृह से मुक्ति पाकर यह रूस में आए, वैसे ही इनके पिता का स्वर्गवास हो गया, जिसके कारण इन्हें फौज की नौकरी छोड़नी पड़ी। कुछ काल पश्चात् इनका विवाह राजकुमारी 'मेरी वाल्काँस्की' के साथ हुआ। दहेज़ में इनको बहुत बड़ी जागीर भी मिली। 'काउण्ट निकोलस टालस्टाय' अब एक अच्छे जागीरदार थे, परन्तु इनका स्वभाव अन्य जागीरदारों या ज़मींदारों के स्वभाव से बिलकुल भिन्न था। यह अपने प्रजाजनों के साथ अत्यन्त सहानुभूति एवं सहृदयता-पूर्ण व्यवहार करते थे।

काउण्ट निकोलस टालस्टाय की धर्मशीला धर्मपत्नी मेरी वाल्काँस्की के गर्भ से सन् १८२८ ई० के सितम्बर मास में हमारे चरितनायक 'काउण्ट लियो टालस्टाय' का जन्म हुआ। राजकुमारी और जागीरदार की पत्नी होकर भी मेरी वाल्काँस्की अपने बच्चों का पालन-पोषण स्वयं करती थी। यों तो माता-पिता का अपनी सभी सन्तान पर स्वाभाविक स्नेह होता है, परन्तु मेरी वाल्काँस्की का लियो टालस्टाय पर जन्मकाल से ही विशेष प्रेम था। लेकिन लियो टालस्टाय अधिक मातृ-प्रेम अपने भाग्य में लिखाकर नहीं

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

लाया था। अभी वह अबोध बालक ही था, कि उसकी स्नेहमयी माता का स्वर्गवास हो गया। माँ के दिवंगत हो जाने पर लियो टालस्टाय के पालन-पोषण के लिए धाय और नौकर नियुक्त किए गए। परन्तु अब भी इसकी असली देख-रेख निकोलस टालस्टाय की एक बहन करती थी। निकोलस के समान ही उसकी बहन भी बड़ी दयावती और धर्मशीला थी। टालस्टाय के हृदय में दीन-दुखियों के प्रति जो असीम सहानुभूति का सागर हिलोरें मारता था, वह सब उसकी दयामयी बूआ की ही देन थी।

टालस्टाय का स्वभाव बचपन से ही विचित्र प्रकार का था। वह प्रायः एकान्तवास अधिक पसन्द करता। बहुत बार टालस्टाय निर्जन स्थान में एकाकी बैठकर न जाने क्या-क्या सोचता रहता। इसी अवस्था में उसने अपने भाई निकोलस द्वारा दिए गए 'चींटियों के-से भाई-चारे' के उपदेश से प्रभावित होकर उक्त नाम का खेल बनाया था, जिसके सम्बन्ध में उसने अपने आत्मचरित में लिखा है—'चींटियों के भाई-चारे' वाला आदर्श अब भी मेरे हृदय में मौजूद है। हाँ, उसमें इतना अन्तर अवश्य हो गया है कि पहले मैं चादर से ढकी कुर्सी के नीचे बैठकर भाई-बहनों को ही हृदय से लगाता था, अब इस अनन्त नीले आकाश के नीचे बैठकर मनुष्यमात्र को हृदय से लगाना चाहता हूँ।' एक बार टालस्टाय पर विचित्र धुन सवार हुई, उसने सोचा कि जब एक दिन मरना ही है, तब सुखपूर्वक जीवन क्यों न बिताया जाय। पढ़ने-लिखने में व्यर्थ समय बर्बाद करने से क्या लाभ। यह विचार मन में आते ही टालस्टाय ने किताबें फेंक दीं और वह खूब आराम से पड़ा रहने लगा। परन्तु टालस्टाय का यह विचार स्थायी न था। थोड़े दिनों बाद कुछ सोच-समझ कर वह फिर पढ़ने-लिखने लगा।

टालस्टाय दस ही वर्ष का था, कि उसके सिर पर से आदरणीय पिता की भी छत्रछाया उठ गई। अभी पितृ-वियोग-जन्य

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

दुःख को टालस्टाय भली भाँति भूल भी न पाया था, कि दूसरे वर्ष ही उसकी बूआ भी इस असार संसार को परित्याग कर स्वर्ग सिधार गई। एक वर्ष के भीतर ही जनक तथा जननी-कल्प बूआ के वियोग से टालस्टाय के बाल-हृदय को बड़ी ठेस लगी। परन्तु उसके बड़े भाई निकोलस बहुत ही समझदार और दूरदर्शी थे। उन्होंने टालस्टाय को सँभाला और वे उसकी शिक्षा-दीक्षा का उचित प्रबन्ध करने लगे।

लड़कपन से ही टालस्टाय की श्रद्धा धर्म में अधिक थी। जब उसके पिता जीवित थे, तभी वह उनके साथ गिर्जे में जाया करता तथा बड़ी श्रद्धा से धर्मोपदेश सुनता था। टालस्टाय धर्मोपदेशों को सुनकर ही न रह जाता, प्रत्युत उनके अनुसार व्यवहार भी करता। उसे खेल-कूद का भी बहुत शौक़ था, परन्तु खेलने के लिए बेचारा घर के घेरे से बाहर न जा सकता था। कारण कि उन दिनों रूस में ग़रीब-अमीर का बड़ा पक्षपात था। धनवान् निर्धनों पर अत्याचार ही नहीं करते थे, बल्कि उनके साथ उठने-बैठने और बात-चीत करने में भी घृणा करते थे। ग़रीब-अमीरों के बालक एकजगह मिलकर खेल भी न सकते थे। फिर एक जागीरदार का लड़का टालस्टाय खेले तो किसके साथ?

टालस्टाय जब प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त कर चुका, तो उसे 'केजाँ' के कालेज में प्रविष्ट कराया गया। इस विद्यालय में अमीर घरानों के बालक ही पढ़ते थे। यह खोला ही उनके लिये गया था। यहाँ पर पढ़ने वालों को पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त थी। वे पढ़ें चाहे खेलें। परीक्षा में पास होने का उनके लिए बन्धन न था। विद्यार्थी की जब इच्छा हो एक विषय छोड़ कर दूसरा विषय ले सकता था। भला रूस में धनिकों के बालकों पर प्रतिबन्ध लगा ही कौन सकता था! यहाँ आकर टालस्टाय को तो मानो मुँह माँगी मुराद मिल गई। उसका मन पढ़ने-लिखने में तो वैसे

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

ही न लगता था। और गणित, भूगोल, इतिहास विज्ञान आदि पढ़कर टालस्टाय को करना भी क्या था? वह तो दुनिया में जो कुछ करने आया था, उसकी शिक्षा उसे माता के गर्भ में ही मिल चुकी थी। जो कमी रह गई थी उसकी पूर्ति उसकी बूआ ने बचपन में कर दी थी। वह शिक्षा इन स्कूलों या कालेजों में दी भी तो नहीं जाती। ऐसी दशा में टालस्टाय पढ़ता तो पढ़ता ही क्या? फिर भी 'केज़ाँ' में रहकर वह पढ़ाई की रस्म अदा कर रहा था।

सन् १८४६ ई० में टालस्टाय के नगर तथा उसके आस-पास के इलाक़े में भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा। जब इस विपत्ति का समाचार टालस्टाय ने सुना, तो उसके हृदय में दुकाल-पीड़ितों की सहायता करने का विचार उत्पन्न हुआ। इससे पूर्व भी वह यथा-सम्भव दीन-दुखियों की सेवा-सहायता किया करता था। टालस्टाय उस समय विश्वविद्यालय से छुट्टी लेकर घर को चल दिया। घर पहुँचकर वह तन-मन-धन से ग़रीब किसानों की सहायता में लग पड़ा। परन्तु दुर्भाग्यवश कृषक लोग उसकी सहायता से अधिक लाभ न उठा सके। वे लोग टालस्टाय की सेवा-सहायता में कोई धूर्त्तता या षड्यन्त्र अन्तर्निहित देखते थे, इसलिए टालस्टाय से दूर भागते। सच पूछा जाय तो उन लोगों का शंकित होना ठीक भी था। दूध का जला छाछ फूक-फूक कर पीता है। वहाँ के ज़मींदारों द्वारा किसानों पर जो अत्याचार किए जाते थे, वहाँ अमीर-ग़रीबों में जो पक्षपातपूर्ण भेद-भाव था, उन सबके होते हुए ग़रीब लोगों को विश्वास न होता था, कि एक जागीरदार का लड़का निष्कपट भाव से भी हम लोगों की सहायता कर सकता है। वस्तुतः वहाँ धनी और निर्धनों के बीच भेद-भाव की जो गहरा खाई बन गई थी, उसका पाटना कठिन था। टालस्टाय को कृषकों की ऐसी मनोवृत्ति देख बड़ी निराशा हुई और अन्त में उसने अपना सहायता-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

कार्य बन्द कर, विद्यालय में पुनः पढ़ना प्रारम्भ कर दिया।

कहने को तो टालस्टाय कालेज में पढ़ता था, पर वास्तव में उसका मन पढ़ने में ज़रा भी नहीं लग रहा था। उपर्युक्त घटना ने उसके हृदय में उथल-पुथल मचा दी थी। प्रायः वह बैठा-बैठा रूसी प्रजा की दयनीय दशा पर आँसू बहाया करता था। वह सोचता—आख़िर इन लोगों को इस अपार संकट-सागर से कैसे पार किया जाय। जब लोगों में इतना अविश्वास है कि उसके कारण वे अपना हित-अनहित भी नहीं पहचानते, अपने शुभचिन्तक को भी छली और मक्कार समझते हैं, तब भला इनका उद्धार किस प्रकार किया जा सकता है। फिर भी टालस्टाय हिम्मत न हारता और मन ही मन प्रतिज्ञा करता—कुछ भी हो, मुझे वह मार्ग अवश्य ही ढूँढ निकालना है, जिसके द्वारा रूस वासियों का ही नहीं, समस्त संसार का कल्याण हो। टालस्टाय दिन-रात इसी उधेड़-बुन में लगा रहता था, उसकी रुचि पढ़ने-लिखने की ओर बिलकुल न रही थी। उसने तुर्की, अरबी आदि भाषाओं और गणित, इतिहास, भूगोल, क़ानून, विज्ञान आदि सभी विषयों में टक्कर मारी परन्तु उसका मन किसी में न लगा। धर्मशास्त्र से तो उसे एक प्रकार से घृणा-सी हो गई थी। टालस्टाय जब देखता कि बड़े-बड़े धर्माचार्य और प्रसिद्ध-प्रसिद्ध पादरी भी—जो रात-दिन प्रभु ईशु पर ईमान लाने और प्राणिमात्र पर दया दरसाने का उपदेश देते-देते नहीं अघाते—शासकों को निरीह प्रजाजनों पर अन्याय करने से नहीं रोकते, उलटे अत्याचार करने में ज़ारशाही का हाथ मज़बूत करते हैं, तो उसे उनसे और उनके धर्म से घृणा होनी स्वाभाविक ही थी। यही कारण था कि टालस्टाय का बचपन में धर्म पर जैसा विश्वास था, वह अब वैसा न रह कर नास्तिकता में परिणत हो गया था।

दिन-रात चिन्तित रहने के कारण टालस्टाय का स्वास्थ्य

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

बहुत गिर गया था, अतः उसने पढ़ाई-लिखाई को अन्तिम प्रणाम कर घर का रास्ता लिया और वह घर पर दिन-रात पड़ा रहने लगा। टालस्टाय के भाई बहुत चाहते थे कि इस तरह पड़े रहकर टालस्टाय अपना जीवन बर्बाद न करे, बल्कि कुछ पढ़े-लिखे, परन्तु वह किताबी पढ़ाई-लिखाई से कोसों दूर भागता था। अन्त में निराश होकर उसके भाई ने उसे सेना में भर्ती करा देना चाहा। अस्तु; टालस्टाय टिफलिस के मिलिटरी कालेज में भर्ती करा दिया गया। यह काम टालस्टाय को पसन्द आया और वह तत्परता पूर्वक सैनिक-शिक्षा ग्रहण करने लगा। कुछ ही दिनों में उसने परीक्षा पास करली और उसे तोपखाने में स्थान मिल गया। टालस्टाय तोपख़ाने में पहुँचा ही था, कि उन्हीं दिनों उसकी पलटन को काकेशिया प्रान्त में रहने वाली कासियन नामक लुटेरी जाति का दमन करने के लिए जाना पड़ा। वहाँ जब टालस्टाय ने सेना को लूट-खसोट करते देखा, तो उसे सैनिक कार्य से भी अरुचि हो गई। वह सोचने लगा—सेना तो प्रजा की रक्षा के लिए बनाई जाती है, और जब वही प्रजाजनों को लूटने-मारने लगे, तो बस अन्याय और अन्धेर की पराकाष्ठा ही समझनी चाहिये। बाड़ ही जब खेत को खाने लग जाय, तो ऐसे खेत का दाता ही बेली है। टालस्टाय ने उसी समय फ़ौजी नौकरी से त्यागपत्र देने का दृढ़ निश्चय कर लिया।

टालस्टाय का त्यागपत्र अभी स्वीकार नहीं हुआ था, कि रूस के क्रीमिया प्रदेश पर अँगरेजों और फ्रांसीसियों द्वारा आक्रमण किए जाने की ख़बर मिली। इस समाचार को सुनकर टालस्टाय के हृदय में देश-प्रेम की लहर उठी और उसने युद्ध-क्षेत्र में पहुँच शत्रुओं से लड़ने की इच्छा प्रकट करते हुए अपना त्यागपत्र वापस ले लिया। टालस्टाय की प्रार्थना स्वीकार हो गई और उसे समर-भूमि में भेज दिया गया। वहाँ टालस्टाय ने बड़े ही साहस

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

और उत्साह से अपना कर्त्तव्य पालन किया। वह पूरे एक वर्ष तक शत्रुओं द्वारा क़िले में घिरा हुआ उनका मुक़ाबला करता रहा। टालस्टाय स्वयं तो वीरता-पूर्वक लड़ता ही था साथ ही अपने सहयोगियों को प्रोत्साहित भी करता था। अन्त में विजय भी इन्हीं के हाथ लगी।

वस्तुतः टालस्टाय जगत् में किसी पर हथियार उठाने या अत्याचार करने नहीं आया था। उसका प्रादुर्भाव तो पिटते हुओं को बचाने, गिरे हुओं को उठाने, बन्धन में पड़े हुओं को छुड़ाने और दीन-दुखियों को गले लगाने के लिए हुआ था। उसका जन्म तो इस अनन्त आकाश के नीचे प्राणिमात्र के साथ चींटियों का-सा भाई-चारा स्थापित करने के लिए हुआ था। यों तो विपद्-ग्रस्तों और भयत्रस्तों के लिए टालस्टाय के विशाल हृदय में पहले ही से दया का दरिया उमड़ रहा था, परन्तु अब युद्ध में हतों की दुर्दशा और आहतों की करुण कराहट ने तो उस दरिया में भयङ्कर तूफ़ान उठा दिया था। अब तो उसे युद्ध से इतनी घृणा हो गई थी, कि इस विजय के उपलक्ष्य में रूसी सिपाहियों को दिये गए प्रीतिभोज तक में वह सम्मिलित नहीं हुआ। इस युद्ध में सम्मिलित होने के प्रायश्चित्त स्वरूप टालस्टाय ने कुछ काल सिवास्टोपाल के फ़ौजी शफ़ाख़ाने में सेवाकार्य किया। वहाँ वह घायल सिपाहियों की सेवा बड़ी लगन से करता, साथ ही उन्हें अनेक प्रकार से सान्त्वना भी देता था। यहाँ रह कर टालस्टाय को ग़रीबों और दुखियों के साथ भाई-चारे का व्यवहार करने का अवसर मिला। जब थोड़े दिनों दुखियों की सेवा-शुश्रूषा करके टालस्टाय के हृदय का भार कुछ हलका हो गया, तब उसने फ़ौजी नौकरी छोड़ कर घर का रास्ता लिया।

टालस्टाय को उठते-बैठते, सोते-जागते, खाते-पीते प्रतिक्षण देशोद्धार की धुन और लोक-कल्याण की लगन लगी रहती थी।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

आर्थिक सहायता-दान द्वारा जनता के कष्ट निवारण में एक बार वह अकृतकार्य हो चुका था। और इस विधि से रूस जैसे विशाल देश में रहने वाले करोड़ों दीन-दुखियों की सहायता भी कहाँ तक की जा सकती थी। फिर अकेली आर्थिक कठिनाई ही तो उन लोगों के सामने न थी, आए दिन नये-नये अनेक अत्याचारों के पहाड़ बेचारी निरीह प्रजा पर ढाए जाते थे। इन सब बातों पर गम्भीरता पूर्वक विचार करने के अनन्तर टालस्टाय इस निश्चय पर पहुँचा कि केवल अन्न-वस्त्र की सहायता द्वारा पीड़ित प्रजा के दुःख दूर न होंगे। इसके लिए तो अमीर-ग़रीब सबके विचारों को आमूल परिवर्तित करने की आवश्यकता है। समाज में उथल-पुथल मचाने की ज़रूरत है। लोगों को दान देना उनके लिए उतना हितकर न होगा, जितना उनके हृदयों में निर्भयता और समता के भाव भरना। और यह काम लेखनी तथा वाणी द्वारा ही हो सकता है।

उक्त निश्चय पर पहुँचते ही टालस्टाय ने अपनी लेखनी सँभाल ली और वह सर्वात्मना समाज-सुधारक साहित्य की सृष्टि करने में संलग्न हो गया। यह सच है कि रूस को वर्तमान रूप सशस्त्र क्रान्ति द्वारा ही प्राप्त हुआ है, परन्तु क्रान्ति के महत्त्व को समझने की योग्यता, उसमें प्रवृत्त होने का साहस और उस पर अटल रहने की दृढ़ता आदि सब गुण टालस्टाय के उपदेश-पूर्ण लेखों तथा सनसनी उत्पन्न कर देने वाली पुस्तकों ने ही जनता को प्रदान किये। हिंस्र जन्तुओं से परिपूर्ण बीहड़ वन में पहले पहल मार्ग तैयार करना बड़ा कठिन काम है। यह काम टालस्टाय ने किया।

लेख लिखने का कार्य टालस्टाय ने उसी समय से प्रारम्भ कर दिया था; जब वह फ़ौज में नौकर था। सब से प्रथम उसने जो कुछ लिखा था वह 'सात्रेमिनक' नामक पत्र में 'बचपन'

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

नाम से प्रकाशित हुआ। इसके अनन्तर 'ज़मींदार का सवेरा', 'लड़कपन', 'जवानी' आदि शीर्षकों से लेखमालाएँ निकलीं, जिन्हें जनता ने ख़ूब पसन्द किया और उनका उस पर पर्याप्त प्रभाव भी पड़ा। आश्चर्य तो यह है कि युद्ध-क्षेत्र में भी टालस्टाय ने लेख लिखने का काम बराबर जारी रक्खा। युद्ध-काल में इसने जो कहानियाँ लिखीं वह 'सिवास्टो पोल' की कहानियों के नाम से आज भी मिलती हैं। टालस्टाय की रचनाओं में किसी के प्रति दुर्भाव की गन्ध भी न होती थी, वह तो मनुष्यमात्र की कल्याण-कामना से लिखी जाती थीं और उनमें विश्व-बन्धुत्व के भाव भरे होते थे। यही कारण है कि टालस्टाय की सब रचनाएँ धनी और निर्धन, राजा और प्रजा, शासक और शासित सब में समान रूप से पसन्द की जाती थीं। उसकी लिखी सिवास्टो पोल की कहानियाँ तो तत्कालीन रूस सम्राट् को भी इतनी पसन्द आईं, कि उसने टालस्टाय को ख़तरे की जगह न भेजे जाने के लिए विशेष रूप से व्यवस्था कर दी।

टालस्टाय की लेखन-कला की धाक सब पर जम गई थी। सिवास्टो पोल का युद्ध समाप्त होते ही उसे वहाँ की रिपोर्ट तैयार करने का काम सौंपा गया, जिसे उसने बड़े सुचारु रूप से संपादन किया। रिपोर्ट लेकर टालस्टाय 'सेंट पीटर्स वर्ग' गया, जहाँ पर उसका बड़े-बड़े लोगों ने स्वागत किया। यहाँ पर रूस का सर्वश्रेष्ठ कलाकार 'तुर्गनेव' भी टालस्टाय से मिलने आया तथा उसने उसे अपने घर ले जाकर विशेष रूप से दावत दी।

टालस्टाय को अपनी लेखनी सँभाले अभी दो या तीन ही वर्ष हुए थे, कि रूस में उसका चमत्कार दिखाई पड़ने लगा। सर्व साधारण में सुधार की भावना जाग्रत हो उठी तथा अनेक शासकों तक के विचारों में परिवर्त्तन प्रारम्भ हो गया। १८५५ ई० में 'ज़ार निकोलस प्रथम' के स्वर्गवासी हो जाने पर जो नया

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

बादशाह 'ज़ार एलेग्ज़ेण्डर' गद्दी पर बैठा · टालस्टाय के उपदेशों ने उस पर बहुत प्रभाव डाला। उसके विचार बहुत कुछ सुधरे हुए थे। उनमें उदारता का पर्याप्त अंश था। शासन की बागडोर 'एलेग्ज़ेण्डर' के हाथों में आते ही जनता ने सुधारों की माँग उपस्थित की। परन्तु अभी वहाँ के उच्च अधिकारी, जागीरदार और ज़मींदार सुधारों के बहुत विरोधी थे। होते भी क्यों न? जनता के सुधार उनके लिए तो बिगाड़ स्वरूप ही थे। भला वे ऐसे सुधार क्यों होने देते, जिनसे उनके हलुआ-माँड़े पर हरफ़ आता था। उनके जन्मसिद्ध अधिकार—भेंट और बेगार पर कुठार चलता था। उनकी उच्छृंखलता रूपी ऊँटनी की नाक में नकेल पड़ती थी और स्वेच्छाचारिता-सर्पिणी के दाँत उखाड़े जाते थे।

जनता और अधिकारियों में अपने-अपने अधिकारों के लिए खींचा-तानी होने लगी। परस्पर एक विचित्र संघर्ष शुरू हो गया। इस अधिकार-युद्ध में टालस्टाय भी अपनी क़लम-कृपाण लेकर कूद पड़ा और उसने वह-वह कमाल दिखाये कि लोग दंग रह गये। टालस्टाय के करारे वार अपना काम कर गये और अन्त में ज़मींदारों और जागीरदारों को झुकना ही पड़ा। इस समय टालस्टाय ने पत्रों में सैकड़ों लेख छपाये और उनके द्वारा रूस के दासों की दयनीय दशा का वह कारुणिक चित्र लोगों के सामने रक्खा, कि देखने वालों के हृदय हिल गये। लेखों के अतिरिक्त टालस्टाय ने उसी विषय पर 'पोली कोशका' शीर्षक एक कहानी भी लिखी थी। इस कहानी ने तो बस ग़ज़ब ही ढा दिया। जिसने भी इसे पढ़ा वही ग़ुलामों की हालते-ज़ार पर आँसू बहाए बिना न रह सका।

इस प्रकार टालस्टाय ने अपने क़लम की करामात से रूस का लोकमत दासों के पक्ष में कर सुधारवादियों के मत का समर्थन

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

किया। अन्त में तीन वर्ष के प्रबल संघर्ष के पश्चात् रूस से दास-प्रथा को देश-निकाला दिया गया। बादशाह की आज्ञा से दासों को दासत्व से तो मुक्त कर दिया गया, परन्तु उनके प्रति धनिकों के व्यवहार में कोई अन्तर नहीं आया। उनको अब भी वैसे ही घृणा की दृष्टि से देखा जाता और उनके साथ वही पशुओं का-सा व्यवहार किया जाता था। इस विषम व्यवहार को दूर करने के लिए राजा की ओर से बहुत-से पञ्च नियुक्त किए गये। इन पञ्चों में एक टालस्टाय भी था। टालस्टाय सदैव दासों का पक्ष लिया करता, जिसके कारण अनेक ज़मींदार और सरदार उसके विरोधी बन बैठे। वे टालस्टाय की झूठी शिकायतें बना-बनाकर राजा के पास भेजने लगे। टालस्टाय को जब इस बात का पता लगा तो उसने इस्तीफ़ा देकर पञ्चगिरी को प्रणाम कर लिया।

टालस्टाय जैसा लिखता या कहता था, वैसा ही करता भी था। उसके मन, वचन और कर्म में सदैव समता रहती थी। जहाँ वह दूसरों को अपना जीवन सादा बनाने और ग़रीबों की सहायता करने का उपदेश देता था, वहाँ स्वयं वैसा करके भी दिखाता था। टालस्टाय एक बहुत बड़े जागीरदार का लड़का था, परन्तु उसने अपना जीवन बिलकुल सादा बना लिया था। वह अपने खेतों में हमेशा मज़दूरों के साथ मिलकर काम किया करता। जब उसे करने को और कोई काम न होता, तो वह कुल्हाड़ी लेकर जंगल में लकड़ियाँ काटा करता और उन लकड़ियों को किसी अनाथ या विधवा को दे देता। वह अपनी ज़रूरत के प्रायः सब काम अपने हाथों करता था, यहाँ तक कि अपने पहनने का जूता भी अपने हाथों से ही बनाता। छोटी-मोटी यात्राएँ भी टालस्टाय अपना असबाब कंधे पर रख कर पैदल ही किया करता। उसका कहना था—मनुष्यमात्र उस परम प्रभु की सन्तान हैं, अतः सब भाई-भाई हैं। उनमें एक को दूसरे पर शासन करने या

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अनावश्यक दबाव डालने का कोई अधिकार नहीं है। टालस्टाय का यह भी मत था कि संसार में प्रत्येक प्रकार की बुराई फैलाने वाला एक मात्र रुपया है। यह वह शक्ति है, जिसके द्वारा सहज ही में दूसरों को दबाया जा सकता है।

अभिप्राय यह कि टालस्टाय के उपदेश उसके सच्चे हृदय के उद्गार होते थे, यही कारण है, कि उन्हें जो कोई पढ़ता या सुनता वे सीधा उसके हृदय पर ही जाकर असर करते थे। तभी तो वह रूस के ज़ालिम ज़मीदारों, अत्याचारी अधिकारियों और मदोद्धत महाजनों के हृदयों को इतनी जल्दी और इतनी सरलता से बदल सका था। टालस्टाय ने अपनी महत्त्वपूर्ण पुस्तक "क्या करें ?" में एक जगह क्या करें का उत्तर देते हुए लिखा है—अपने जीवन का ढंग बदल डालो और अपने किए पर पश्चात्ताप करो। ग़रीबों की भले ही रुपए-पैसे द्वारा सहायता मत करो, परन्तु उनकी मुसीबतों पर सहानुभूति पूर्वक विचारो और उनके जैसा परिश्रमी जीवन बनाओ। वस्तुतः यही संसार में शान्ति स्थापित करने का महामन्त्र है।

एक ओर तो टालस्टाय अपने लेखों और कहानी-उपन्यासों द्वारा रूसी जनता में भ्रातृत्व के भद्र भाव और समता के सुन्दर विचार उत्पन्न कर रहा था, दूसरी ओर उसने आगे चल कर नागरिक बनने वाली पीढ़ी में बचपन ही से स्नेह और सहानुभूति की भावनाएँ पैदा करने का प्रोग्राम भी बना लिया था। उसका विचार था, कि रूस की शिक्षा-प्रणाली बहुत ही दूषित है। इसलिए उसने अन्य अनेक देशों में घूम-फिर और वहाँ की शिक्षण-पद्धति का अनुशीलन कर रूस में भी आदर्श शिक्षा-प्रथा का प्रसार करना प्रारम्भ कर दिया।

सर्व प्रथम टालस्टाय ने अपने गाँव में ही एक आदर्श पाठशाला स्थापित की। इसमें विद्यार्थियों को प्रत्येक प्रकार की दस्तकारी

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

सिखाने का विशेष प्रबन्ध था, जिससे यहाँ पढ़ कर निकलने वाले भावी नागरिक अपने जीवन-निर्वाह के लिए नौकरी न खोजते फिरें और स्कूल में सीखी हुई किसी भी दस्तकारी द्वारा स्वतन्त्रता पूर्वक जीविका चला सकें। इस विद्यालय में विद्यार्थियों पर किसी प्रकार का दबाव नहीं डाला जाता था, यहाँ तक कि उन्हें घर पर करने के लिए भी कुछ काम नहीं दिया जाता था। टालस्टाय का विचार था कि बाल्यकाल से ही विद्यार्थियों पर बेजा दबाव डालने या अनावश्यक अनुशासन रखने से उनमें मानसिक दासता के भाव पैदा हो जाते हैं। इसलिए टालस्टाय के आदर्श विद्यायल में पढ़ने वालों को पूरी स्वतन्त्रता प्राप्त थी। उनके लिए उपस्थिति का कोई बन्धन न था, फिर भी कोई विद्यार्थी कभी अकारण अनुपस्थित न रहता। किसी भूल के अपराध में बच्चों को कोई दण्ड नहीं दिया जाता था, यहाँ तक कि उन्हें डराया-धमकाया भी नहीं जाता था। बच्चे पढ़ाई-लिखाई को बोझ और स्कूल को जेलख़ाना नहीं समझते थे। उनके मनोविनोद के पर्याप्त साधन विद्यालय में मौजूद थे। बालक बड़े उत्फुल्ल हृदय से खेलते-कूदते विद्यालय में आते और हँसते हुए घर जाते थे। किताबों और कापियों के गट्ठर लाद कर लाने-लेजाने की भी उन्हें कोई ज़रूरत न थी। इस सब के अतिरिक्त उन्हें जो शिक्षा दी जाती, वह तो आदर्श थी ही, जिसे प्राप्त कर बालकों में मनुष्यमात्र के साथ समता के भाव उत्पन्न हो जाते थे।

टालस्टाय का यह उद्योग भी सफल हुआ और इसकी देखा-देखी और लोगों ने भी इसी तरह के विद्यालय स्थापित किए। इनमें पढ़ने वालों में अधिकाधिक स्वतन्त्रता की भावना प्रबल होती जाती थी। जब रूस की गवर्नमेण्ट ने इन स्कूलों को ध्यान पूर्वक देखा, तो वह टालस्टाय के विचारों को तुरन्त समझ गई। उसे इनकी शिक्षा-पद्धति में साम्यवाद की स्पष्ट झलक दिखाई पड़ी।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

तुरन्त शिक्षा-विभाग को आज्ञा हुई कि इन स्कूलों की अच्छी तरह जाँच करके रिपोर्ट की जाय। राजकीय आज्ञानुसार शिक्षा-विभाग ने छान-बीन और जाँच-पड़ताल के बाद रिपोर्ट में लिखा था—शिक्षा के सम्बन्ध में टालस्टाय का उद्योग सराहनीय और शिक्षा-विभाग से साहाय्य पाने योग्य है, परन्तु फिर भी शिक्षा-विभाग उनकी प्रत्येक बात से सहमत नहीं हो सकता।

शिक्षा-विभाग की रिपोर्ट के अन्तिम वाक्य से गवर्नमेण्ट का सन्देह और भी दृढ़ हो गया। वह उसी समय से इन विद्यालयों के प्रति सतर्क रहने लगी। कई बार इन विद्यालयों की पुलिस ने तलाशी भी ली। तलाशी में यद्यपि पुलिस को वहाँ कोई सन्देह-जनक वस्तु नहीं मिली, जिससे वह उनके साथ कुछ क़ानूनी कार्य-वाही कर पाती, फिर भी इस तलाशी-निगरानीसे साधारण जनता भयभीत हो उठी और उसने अपने बालकों को इन विद्यालयों में भेजना बन्द कर दिया। सर्वसाधारण की उपेक्षा के कारण टालस्टाय का यह प्रयत्न विशेष सफल न हो सका।

सन् १८७३ में टालस्टाय के ग्राम और उसके आस-पास के इलाक़े में पुनः भीषण दुर्भिक्ष पड़ने के आसार दिखाई दिए। टालस्टाय ने इसके लिए गवर्नमेण्ट से प्रार्थना की कि यदि पहले ही से दुर्भिक्ष की रोक-थाम नहीं की जायगी तो उसके कारण इस प्रान्त की जनता तो भयंकर विपद् में पड़ेगी ही, साथ ही उसका बुरा प्रभाव दूसरे प्रान्तों पर भी पड़े बिना न रहेगा। परन्तु सरकार ने टालस्टाय की इस प्रार्थना को सुनी-अनसुनी कर दिया। अन्त में वही हुआ जो होना था। बिना अन्न के मनुष्य और बिना चारे के पशु भूख से तड़प-तड़प कर प्राण गँवाने लगे। लोग अन्न के अभाव में पेड़ों की पत्तियाँ और छाल तक खा गए, परन्तु फिर भी उनके पेट की ज्वाला शान्त न हुई। आख़िर उन्होंने आस-पास के प्रान्तों में लूट-खसोट करना शुरू कर दिया। बड़ी भारी

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अशान्ति मच गई।

इस दुर्भिक्ष में टालस्टाय ने जनता की जो सेवा की वह सहस्र मुख से सराहनीय है। उसने अपने पास से तो प्रचुर द्रव्य दिया ही, साथ ही लेख लिख-लिख कर दुर्भिक्ष-पीड़ितों की करुण-कथा देश के कोने-कोने में पहुँचाई और अपील छपा कर लोगों से आर्थिक सहायतार्थ प्रार्थना की। इसका परिणाम यह हुआ कि सहस्रों मन अन्न और लाखों रुपया दुकाल-पीड़ितों के सहायतार्थ एकत्र हो गया। टालस्टाय के इस प्रशंसनीय प्रयत्न द्वारा जनता को बड़ी सहायता मिली। लोगों ने इस बार टालस्टाय को मक्कार या धोखेबाज़ नहीं समझा, प्रत्युत अपना अनन्य हितकारी तथा सच्चा शुभचिन्तक समझा और वह उसे दीनबन्धु कह कर पुकारने लगी।

हम पहले लिख चुके हैं, कि रूस से ग़ुलामी की प्रथा उठ जाने पर भी लोगों में एक दूसरे के प्रति सद्भावना उत्पन्न नहीं हुई थी। गवर्नमेण्ट ने पञ्चों की नियुक्ति करके परस्पर अच्छे विचार पैदा करने की चेष्टा भी की, पर वह उसमें कुछ कृतकार्य न हुई। हो भी कैसे सकती थी? केवल सम्राट एलेग्ज़ेण्डर को छोड़ कर गवर्नमेण्ट की शेष मशीनरी की मनोवृत्ति तो ज्यों की त्यों बनी हुई थी। वह ग़रीबों को अब भी धनिकों के लिए सुख-सुविधाएँ पैदा करने की मशीन समझती थी। उसका विचार था—दुनिया में धनी लोग ऐश-आराम करने और ग़रीब उनके सुख-भोग की सामग्री जुटाने के लिए पैदा हुए हैं। बस राजकीय अधिकारियों का संकेत पाकर जागीरदारों और ज़मींदारों ने प्रजाजनों और विशेष कर दासत्व से मुक्त हुए ग़ुलामों पर और भी अधिक अत्याचार करने शुरू कर दिए। उन्होंने ग़रीबों पर न जाने कितने प्रकार के नए टैक्स लाद दिए। लोगों ने अपनी कष्ट-कथा बादशाह के कानों तक भी पहुँचाई, पर उनकी कहीं कुछ भी सुनाई न हुई। आख़िर

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

मरता क्या न करता वाली कहावत चरितार्थ हुई। अत्याचारों के अन्धड़ से क्षुब्ध जनता के क्रोध ने भयंकर रूप धारण कर लिया और अन्त में १८३१ ई० के मई मास में उसने 'ज़ार एलेग्ज़ेण्डर' की हत्या कर डाली।

अब क्या था, रूस-भर में एक साथ तहलका मच गया। चारों ओर धड़-पकड़ शुरू हो गई। अनेक अपराधी और निरपराध जेलों में ठेल दिए गए तथा सैकड़ों को शीत-प्रधान साइबेरिया के जंगलों में सड़ने को भेज दिया गया। टालस्टाय ने जब देखा कि प्रजा की ओर से तो ग़लती हुई सो हुई अब क्रोधान्ध बादशाह 'एलेजेण्डर तृतीय' सैकड़ों प्रजाजनों को फाँसी पर लटकाना चाहता है, तो उसने महात्मा ईसा के उपदेश का स्मरण करा कर उससे प्रजाजनों पर दया करने की प्रार्थना की। परन्तु उसकी प्रार्थना पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया गया और ज़ार ने सैकड़ों लोगों को मौत के झूले पर झुला दिया। इस हत्याकाण्ड का टालस्टाय के हृदय पर बड़ा दुःखद प्रभाव पड़ा। कई दिनों तक टालस्टाय को खाना-पीना तक भी न रुचा।

इस घटना के बाद टालस्टाय ने 'स्वर्ग का राज्य तुम्हारे अन्दर है' नामक पुस्तक लिखी जिसमें रूसी नौकरशाही की खरी समालोचना की गई थी। इस पुस्तक को पढ़कर रूसी सरकार एक दम चौकन्नी हो गई और उसने उसे तुरन्त ज़ब्त कर लिया। इसी समय टालस्टाय ने 'स्वामी और सेवक' उपन्यास लिखा जिसमें रूस के तत्कालीन मालिकों और नौकरों का सच्चा चित्र खींचा गया था।

टालस्टाय के जीवन-काल में १८९१ ई० में तीसरी बार फिर दुकाल पड़ा। अन्न बिना लोग भूख से तड़प-तड़पकर प्राण गँवाने लगे। चारों ओर त्राहि-त्राहि मच गई। ऐसे संकट-काल में भला टालस्टाय चुपचाप कैसे बैठ सकता था। उस समय

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

उसके पास केवल ७५०) थे, जिन्हें लेकर वह तुरन्त दुर्भिक्ष-पीड़ितों के सहायतार्थ पहुँच गया। इस बार भी टालस्टाय ने बड़ा आन्दोलन किया, जिसके परिणाम स्वरूप लगभग तीन सौ स्थानों में अन्नक्षेत्र खुल गए, जिनमें क़रीब पन्द्रह हज़ार भूखों को प्रतिदिन भोजन दिया जाता था। अब की बार टालस्टाय का पूरा का पूरा परिवार इस सेवा-कार्य में लगा था।

रूस में बहुत प्राचीन काल से एक जाति विशेष बसी हुई थी। इसके धार्मिक और सामाजिक नियम बड़े विचित्र थे। इनको यदि रूस के वर्त्तमान साम्यवाद का आदि गुरु कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। इनके सब कार-व्यवहार साम्यवादियों जैसे ही थे। इस जाति के लोगों में व्यक्तिगत सम्पत्ति पास रखना महापाप माना जाता था। समाज-भर का धन एक जगह रहता और उसी में से प्रत्येक को उसकी आवश्यकतानुसार दिया जाता। प्राणि-मात्र के साथ प्रेम और भाई-चारे का बर्ताव करना इनका मुख्य सिद्धान्त था। हाँ, एक बात में ये लोग वर्त्तमान साम्यवादियों से भी बढ़े-चढ़े थे। वह बात थी मन-वचन-कर्म से अहिंसावृत्ति। सशस्त्र युद्ध की तो बात ही क्या, ये लोग कभी सहसा वाचनिक लड़ाई-झगड़े में भी प्रवृत्त न होते थे। हथियार पास रखना उनके यहाँ अधर्म समझा जाता था। उनका विचार था, कि शस्त्र पास रखने से हिंसक मनोवृत्ति जाग्रत होती है। ये लोग अपने धार्मिक और सामाजिक सभी सिद्धान्तों का बड़ी दृढ़तापूर्वक पालन करते थे। नियम-पालन में उन्हें भले ही भयानक से भयानक विपत्ति का सामना करना पड़े, परन्तु वे उनसे कभी विचलित न होते थे। ये लोग 'दुखोभोर' के नाम से पुकारे जाते थे।

एक बार रूसी सरकार ने 'दुखोभोर' लोगों की कर्त्तव्य-परायणता, दृढ़ता और नियमबद्धता पर मुग्ध होकर इन्हें सेना के लिए उपयोगी समझा और फ़ौज में भर्ती करना चाहा। परन्तु

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

युद्ध करना तो इनके धर्म के ख़िलाफ़ था, अतः इन्होंने सेना में सम्मिलित होने से साफ़ इनकार कर दिया। अपनी आज्ञा की इस प्रकार अवज्ञा करने के कारण सरकार ने क्रुद्ध होकर इन लोगों को काकेशस की पहाड़ियों में बसने वाले जंगली लोगों के साथ रहने को भेज दिया। ये जंगली बड़े ही क्रूर स्वभाव के थे। दिन भर शिकार खेलना और इधर-उधर आते-जाते नागरिकों को लूट खसोटकर मार डालना यही इनकी दैनिक चर्या थी। आरम्भ में तो इन्होंने दुखोभोर लोगों को अनेक प्रकार से कष्ट पहुँचाए, परन्तु थोड़े ही दिनों में दुखोभोरों के अहिंसा, प्रेम, भ्रातृ-भाव आदि गुणों का इन जंगलियों पर भी ऐसा प्रभाव पड़ा कि अपना क्रूर स्वभाव त्याग कर वे दुखभोर लोगों के साथ प्रेम पूर्वक मिल-जुल कर रहने लगे।

संग का असर हुए बिना नहीं रहता। जहाँ आरम्भ में दुखोभोर लोगों के सम्पर्क से जंगली-जातियों की मनोवृत्ति में बहुत कुछ परिवर्तन हुआ वहाँ कुछ दिनों में जंगलियों के संसर्ग से उनमें कई दुर्गुण प्रविष्ट हो गए। ये लोग भी जंगलियों की देखा-देखी शस्त्र रखने लगे, जो इनके सिद्धान्त-विरुद्ध था।

१८९५ ई० में रशियन गवर्नमेण्ट ने जब देखा कि दुखोभोर लोग अब हथियार रखने लगे हैं, तो उसने उन पर पुनः सेना में प्रविष्ट होने के लिए दबाव डाला। अब दुखोभोरों को अपनी भूल की भयंकरता विदित हुई और उन्होंने तुरन्त ही उसका संशोधन कर डाला। समस्त दुखोभोरों के पास जितने भी शस्त्रास्त्र थे, सबको एकत्र करके उन्होंने अग्निदेव के अर्पण कर दिया। इनके इस व्यवहार से रूसी सरकार कुढ़-सी गई और उसने उन लोगों पर भीषण अत्याचार करने प्रारम्भ कर दिये। जहाँ अन्याय और अत्याचार हो, वहाँ टालस्टाय का करुणा-कर न पहुँचे यह कैसे सम्भव हो सकता था। टालस्टाय ने तुरन्त दुखोभोरों के

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

सहायतार्थ आन्दोलन आरम्भ कर दिया। इस बार रूस-गवर्नमेण्ट ने चिढ़ कर दुखोभोर लोगों को पूर्वी रूस के जंगलों में बसने को वाध्य किया। महात्मा टालस्टाय ने दुखोभोरों को ऐसा भीषण दंड न देने के लिए सरकार से प्रार्थना की और अपने तथा अन्य अनेक नागरिकों के हस्ताक्षरों से युक्त एक प्रार्थना-पत्र सरकार की सेवा में भेजा।

सरकार तो दुखोभोरों से जली-भुनी हुई थी। उसने प्रार्थना-पत्र भेजने वालों में से भी बहुतों को देश-बहिष्कृत कर दिया। परन्तु टालस्टाय ने अपने प्रयत्न में शिथिलता नहीं आने दी। आख़िर उनके उद्योग से सरकार ने दुखोभोरों को पूर्वी रूस के जंगलों में भेजने की आज्ञा तो वापस ले ली, परन्तु उन्हें रूस छोड़कर कनाडा चले जाने का हुक्म दे दिया। अब कनाडा जाने के लिए इन सहस्रों लोगों को किराया-भाड़ा कहाँ से आवे। रूसी जनता तो उनकी सहायता करने में डरने लगी थी। वह समझती थी, जब इनके सहायतार्थ प्रार्थना-पत्र भेजने मात्र के अपराध में बहुतों को देश-निर्वासन का दण्ड दिया गया, तो उनकी धन से सहायता करने वालों पर न जाने क्या क़हर ढाया जाय। अन्त में टालस्टाय ने फ़्रांस, जर्मन, इँगलैण्ड आदि देशों के निवासियों से इनके सहायतार्थ अपील की और फलस्वरूप वहाँ से उसे पर्याप्त धन प्राप्त हो गया। इधर टालस्टाय ने अपना नया लिखा 'रिजरेक्शन' नामक उपन्यास भी एक प्रकाशक को इस शर्त पर दिया कि उससे लेखक को मिलने वाला समस्त धन दुखोभोरों की सहायता में दिया जायगा।

महात्मा टालस्टाय का सहायता-कार्य चहुँमुखी था। एक ओर जहाँ उनके रचित साहित्य को पढ़ कर लोग आत्म सुधार करते हुए दीन-दुखियों के प्रति सद्भाव पूर्ण व्यवहार करने के लिए उद्यत होते थे, दूसरी ओर उनकी लिखित पुस्तकों से जो आमदनी

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

होती थी उसे भी वह दीन दुखियों की सहायता में लगा देता था। टालस्टाय ने अपनी रचनाओं के प्रकाशन का अधिकार अपने स्त्री-पुत्रादि को न देकर 'यासरेनडिनक' नामक एक समिति को सौंपा था। यही समिति टालस्टाय की लिखित सब पुस्तकों के प्रकाशन का प्रबन्ध करती और उनसे होने वाली आमदनी देश-सेवा के कार्य में लगाती थी। पुस्तकों के प्रकाशनाधिकार को लेकर टालस्टाय और उनकी स्त्री में एक बार बहुत कुछ संघर्ष भी हो गया था। और उस संघर्ष ने बढ़ते-बढ़ते इतना उग्र रूप धारण किया कि अन्त में टालस्टाय को घर छोड़ कर चले जाना पड़ा। वह एक दिन रात्रि के समय चुपके घर-बार छोड़कर अपनी बहन मेरी के मठ में चले गए और फिर कभी लौट कर घर नहीं आए।

यह महापुरुष यद्यपि ईसाई धर्मानुयायी था, परन्तु उसका अन्धभक्त नहीं था। ईसाइयों में धर्म के नाम पर जो दूषण घुस गए थे, उनका वह प्रबल विरोधी था। वह इन दुर्गुणों की सदा निर्भय और निष्पक्ष समालोचना करता रहता। टालस्टाय ने अपनी कई पुस्तकों में ईसाइयों के ढोंग-ढोल की पोल खोली थी। अपने पोल खाते का भण्डाफोड़ होते देख पादरी लोग टालस्टाय से बिगड़ उठे और उससे अपने इस अपमान का बदला लेने की घात में रहने लगे। पहले तो ईसाई धर्माचार्यों ने टालस्टाय के विरुद्ध बादशाह से शिकायत की। और जब उधर से कुछ होते दिखाई नहीं दिया तब उन्होंने अपना सामाजिक दण्ड का शस्त्र सँभाला तथा टालस्टाय को नास्तिक बता कर ईसाई धर्म से बहिष्कृत करने का फ़तवा दे डाला। परन्तु पादरियों के इस प्रयत्न का भी टालस्टाय पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ा। प्रत्युत टालस्टाय का बहिष्कार करने के बदले जनता उलटे पादरियों के ही विरुद्ध हो गई। मास्को नगर में तो विद्यार्थियों और मजदूरों ने धर्माधिकारियों की उक्त आज्ञा के विरोध प्रदर्शनार्थ भयंकर उपद्रव खड़ा

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

कर दिया। देश के कोने-कोने से लोग डेपूटेशन बना-बना कर टालस्टाय के साथ सहानुभूति प्रदर्शन करने आए। दूसरे देशों से भी अनेक प्रतिष्ठित पुरुषों ने टालस्टाय के प्रति सम्मान एवं सहानुभूति प्रदर्शक पत्र और तार भेजे।

टालस्टाय ने जिस समय गृह-परित्याग किया था, उस समय वह रुग्ण था। रात्रि में सर्दी के समय यात्रा करने के कारण उसकी बीमारी और भी बढ़ गई और अन्त में टालस्टाय के जीवनान्त के साथ ही उसका अन्त हुआ। इस प्रकार अपनी ८२ वर्ष की लम्बी आयु का एक-एक क्षण देश और दीन-दुखियों की सेवा-सहायता में लगाकर इस महापुरुष ने इहलीला संवरण की। सच है, जीना उन्हीं का सार्थक है जो औरों के लिए जीते हैं।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

नेपोलियन बोनापार्ट

इटली के पश्चिम में भूमध्यसागर-स्थित एक छोटा-सा पहाड़ी द्वीप है जिसका नाम कोर्सिका है। बहुत समय तक इस द्वीप पर इटली का ही आधिपत्य रहा और वह इसका एक प्रान्त समझा जाता था। कोर्सिका नवासियों पर इटली की संस्कृति और सभ्यता का विशेष प्रभाव पड़ने के कारण उनकी वेश-भूषा, आचार-विचार बोल-चाल आदि में इटली के रंग-ढंग का पूर्णरूप से सामंजस्य पाया जाता था। दैवदुर्विपाक से अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में इटली के भाग्य ने एक दम पलटा खाया। वहाँ गृह-कलह के कारण राष्ट्रिय भावनायें विनष्ट हो चलीं; शासन-सत्ता शिथिल पड़ गई; उसमें इतनी क्षमता न रह गई थी कि वह कोर्सिका का शासन-कार्य सुचारु रूप से संचालन कर सकती। वहाँ की ऐसी विषम परिस्थिति देख १७६७ ई० में फ्रांस ने कोर्सिका पर आक्रमण कर दिया। देशभक्त कोर्सिका निवासियों ने आत्मरक्षा की भावना से प्रेरित होकर विशाल फ्रेंच सेना का प्राणपण से सामना किया, परन्तु अन्त में उन्हें पराजित होना पड़ा और कोर्सिका फ्रांस राज्य में सम्मिलित कर लिया गया।

जिस समय कोर्सिका निवासी अपनी मातृ-भूमि की मान-मर्यादा के नाम पर फ्रांस की महती सेना से मोर्चा लेने में प्रयत्न-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

शील थे और उसके द्वारा किये गये नाना प्रकार के उत्पीड़न एवं अत्याचार सहन कर रहे थे, उस समय उन स्वतन्त्रता देवी के उपासकों में चार्ल्स बोनापार्ट नामक एक नवयुवक वकील भी था। चार्ल्स बोनापार्ट अत्यन्त कुलीन, सम्पन्न, प्रतिष्ठित एवं प्रतिभाशाली व्यक्ति था। उसके पूर्वजों की आर्थिक स्थिति अच्छी होने के कारण उसे विरासत में यथेष्ट धन मिला था। इसके अतिरिक्त वकालत से भी उसकी अच्छी आमदनी हो जाती थी। उसके दो मकान थे जिनमें से एक पत्थर का भव्य भवन अजेशियो नगर की शोभा बढ़ा रहा था और दूसरा समुद्र तट पर स्थित एक गाँव में चार्ल्स परिवार के लिए जल-वायु परिवर्त्तन की सुविधा उपस्थित करता था।

चार्ल्स बोनापार्ट के हृदय में आत्मसम्मान तथा देशभक्ति के भाव प्रचुर परिमाण में भरे हुए थे, फिर भला कोर्सिका पर संकट की घटा घिर आएँ और वह चुपचाप शान्त बैठा रहे, यह कैसे सम्भव था। उसने कोर्सिका की स्वतन्त्रता हरण होते देख तुरन्त अपनी वकालत पर लात मार दी और विद्रोहियों के नेतृत्व की बागडोर अपने हाथ में सँभाल बड़े उत्साह पूर्वक यत्रतत्र सर्वत्र आक्रमणकारियों से भिड़ना प्रारम्भ कर दिया। उसकी पत्नी 'लेरे-शिया रोमोलिना' ने तो इस अवसर पर और भी विचित्र साहस का परिचय दिया। वह उस समय गर्भवती थी, परन्तु फिर भी इस संकटापन्न दशा में घोड़े पर सवार हो, छाया की तरह अपने वीर पति की अनुगामिनी बनी इधर-उधर फिरती थी।

कोर्सिका पर फ़्रांस का आधिपत्य तो स्थापित हो ही गया परन्तु वहाँ के निवासियों के हृदयों में विदेशी शासन-सत्ता के प्रति घृणा के भाव अब भी जागरूक थे। उनकी हार्दिक कामना थी कि किसी न किसी प्रकार फ़्रांस के जुए को कोर्सिका के कन्धे पर से उतार फेंके, अतः कभी-कभी वे भयङ्कर विद्रोह का बवण्डर खड़ा कर देते थे।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

इस प्रकार के विप्लवकारी वातावरण में १७६९ ई० की १५ वीं अगस्त को चार्ल्स बोनापार्ट और उसकी पत्नी लेरेशिया रोमालिना गिर्जे में ईश्वर-प्रार्थना करने के लिए गए हुए थे, कि वहीं अचानक लेरेशिया को प्रसव-पीड़ा का अनुभव होने लगा। वह तुरन्त अपने पति के साथ घर वापस आई और वहाँ पहुँचते ही उसके उदर से एक शिशु का जन्म हुआ जिसका नाम 'नेपोलियन बोनापार्ट' जगद्विख्यात है।

नेपोलियन की अवस्था जब पाँच-छह वर्ष की हुई तो उसे घर पर अक्षराभ्यास कराकर अजेशियो के एक स्कूल में दाखिल करा दिया गया। उस समय नेपोलियन की माँ ने उसे फ़ौजी ढंग की वर्दी बनवा दी थी, जिसे पहनकर वह बड़ा प्रसन्न होता और प्रफुल्लहृदय सड़कों पर उछलता फिरता था। स्कूल में नेपोलियन को अपने साथ पढ़ने वाली एक समवयस्का लड़की से बड़ा स्नेह हो गया था। वह नित्यप्रति उसी के साथ स्कूल जाता तथा छुट्टी मिलने पर उसके साथ ही हाथ में हाथ मिलाकर घर वापस आता था। उसके सहपाठियों को इन दोनों का संसर्ग देखकर बड़ी ईर्ष्या होती थी। वे उनकी खिल्लियाँ उड़ाते और उनके ऊपर नाना प्रकार के उपालम्भों की वर्षा करते थे। नेपोलियन प्रायः इन बातों की उपेक्षा ही करता रहता, परन्तु जब कभी साथियों के वाग्वाणों से उसे मर्मान्तक वेदना पहुँचती तो वह उनकी बड़ी संख्या का किंचित् विचार न करके उन पर बुरी तरह टूट पड़ता और उन्हें नोंच-खसोट, तथा ईंट पत्थरों की मार से घायल कर भगा देता।

अजेशियो के स्कूल की प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् नेपोलियन अपने एक मित्र की सहायता से पैरिस के समीप 'ब्रीन' के फ़ौजी स्कूल में भर्ती हो गया। इस समय उसकी आयु केवल दस वर्ष की थी। अपने प्यारे परिवार से विलग होकर परदेश के जाते हुए नेपोलियन का हृदय भर आया और उसके

CC0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

नेत्रों से टप-टप आँसू टपकने लगे। ब्रीन के स्कूल में पहुँचकर उसे विचित्र प्रकार का वातावरण दीख पड़ा। वहाँ शिक्षोपार्जन करने वाले सभी छात्र प्रायः पूँजीपतियों के पुत्र थे और फ्रेंच भाषा बोलते। वे नेपोलियन को घृणा की दृष्टि से देखते और उसे चिढ़ाया करते। इसका कारण यह था कि वह एक विजित और पराधीन देश का रहने वाला विद्यार्थी था। एक बार तो ऐसा हुआ कि कितने ही विद्यार्थी मिलकर नेपोलियन को तंग करने लगे। नेपोलियन ने उनके इस कायरतापूर्ण दुस्साहस के लिये उन्हें खूब धिक्कारा, परन्तु फिर भी धृष्टता पूर्वक वे उसे चिढ़ाते ही रहे। अन्त में नेपोलियन से उनका अपमान जनक व्यवहार सहन न हो सका। वह क्रुद्ध होकर उन पर टूट पड़ा और उसने उन्हें खूब ठोका। इस संघर्ष में नेपोलियन के भी बहुत चोटें आईं। इस घटना के अनन्तर उसने अपने साथियों का संसर्ग त्याग कर अपनी पुस्तकों के अनुशीलन में संलग्न रहने की दृढ़ प्रतिज्ञा करली।

नेपोलियन कुशाग्रबुद्धि तथा अध्यवसायी होने के कारण एक प्रगतिशील छात्र था। उसने अल्प काल ही में इतनी उन्नति करली कि वह अपनी कक्षा में सर्व प्रथम विद्यार्थी समझा जाने लगा। नेपोलियन के अध्यापक उसकी असामान्य प्रतिभा देखकर आश्चर्यचकित होते थे। गणित में उसकी असाधारण योग्यता थी; इतिहास और भूगोल का अध्ययन वह बड़ी रुचिपूर्वक करता था; वीर पुरुषों की जीवन-कथाओं का पारायण करने की उसमें विशेष प्रवृत्ति थी। इस स्कूल में नेपोलियन का अपने एक बोरीन नामक सहपाठी से प्रगाढ़ प्रेम था, क्योंकि वह नेपोलियन को अन्य विद्यार्थियों की भाँति चिढ़ाता न था।

नेपोलियन विद्यार्थी-जीवन में अपनी छुट्टियाँ प्रायः कोर्सिका में ही व्यतीत किया करता। वहाँ के जंगलों, पहाड़ियों और घाटियों

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

में घूमने से उसे बड़ी प्रसन्नता होती थी। अपनी माता द्वारा कोर्सिका के पराधीन होने की कष्टप्रद कहानी सुनकर उसका हृदय सिहर उठता, और उसमें देश-प्रेम का दरिया हिलोर लेने लगता था। नेपोलियन को वहाँ के तत्कालीन नेता 'पवाली' के प्रति बड़ी श्रद्धा थी। वह पवाली के विरुद्ध किसी को अपशब्द कहते सहन नहीं कर सकता था।

ब्रीन के स्कूल में पाँच वर्ष शिक्षा पाकर नेपोलियन पेरिस के फ़ौजी स्कूल में पहुँचा। वहाँ दाखिल होने से पूर्व उसकी परीक्षा ली गई। परीक्षक ने उसे सब तरह योग्य पाकर उसकी बड़ी प्रशंसा की। पेरिस के स्कूल में भी नेपोलियन ने पूँजीवाद का बोल-बाला पाया। वहाँ जितने विद्यार्थी थे सब अहंकार में चूर, विलासी और सुखमयजीवन यापन करने में लिप्त थे। प्रत्येक के पास घोड़े की देखभाल करने, हथियारों को साफ़ रखने आदि छोटे-छोटे कामों के लिए भी एक-एक नौकर था। वे अपने हाथ से जूते साफ़ करने तथा उन्हें खोलने बाँधने में भी मान-हानि समझते थे। नेपोलियन जब शिक्षा प्राप्त करने के लिए उनमें सम्मिलित होता तो ये मदान्ध विद्यार्थी उसके प्रति घोर घृणा प्रदर्शित करते। परन्तु नेपोलियन इसकी तनक भी परवाह न कर अपने लिखने-पढ़ने में ही व्यस्त रहता था।

१७८५ ई० में नेपोलियन के पिता की मृत्यु हो गई। इस दारुण दुःख को उसने बड़े धैर्य पूर्वक सहन किया और अपनी माता तथा भाई-बहनों को सान्त्वना देकर सदैव उनके साथ पारिवारिक प्रेम-सम्बन्ध बनाए रखने और उनकी सेवा करते रहने का उन्हें अभि-वचन दिया। नेपोलियन की माता बड़ी चतुर महिला थी। पति की मृत्यु के पश्चात् उसने अपने उत्तरदायित्व को भले प्रकार समझा। उसके पास आमदनी का कोई साधन न रह गया था, अतः ऐसी विषम परिस्थिति में अपने बाल-बच्चों का अल्प व्यय में

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पालन-पोषण करने के विचार से वह उन्हें लेकर अपने देहात के मकान में चली गई। इस मकान के एक ओर पत्थर का ऊँचा टीला था और समीप ही हरी-हरी घास से आच्छादित एक छोटा-सा मैदान। नेपोलियन के भाई-बहन इस मैदान में खेलते और प्रसन्न होते थे। वे कभी तितलियाँ उड़ाते तो कभी नंगे होकर नालियों के पानी में किलोल करते और कभी कुत्तों की पीठ पर बैठ कर चड्डी खाने का आनन्द लूटते थे, परन्तु नेपोलियन खेल-कूद से विरक्त-सा रहता था। वह अपनी पुस्तक लेकर चुपचाप चट्टान पर चढ़ जाता और वहाँ बैठा-बैठा भूमध्यसागर में अठखेलियाँ करती हुई लहरों को देखकर प्रसन्न होता, अथवा प्रशान्त जलराशि एवं गगन मण्डल का अवलोकन कर किसी गम्भीर विचार में तल्लीन हो जाता।

पेरिस के स्कूल में सैनिक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् नेपोलियन तोप-विभाग में अफ़सर नियुक्त हो गया। नियुक्ति से पूर्व उसकी परीक्षा ली गई थी। वह गणित में सब उम्मेदवारों में प्रथम उत्तीर्ण हुआ। इसके अतिरिक्त इतिहासमें उसकी अद्भुत योग्यता देख कर तो उसके परीक्षक ने नेपोलियन की बड़ी प्रशंसा की और कहा कि यह लड़का किसी समय ख़ूब उन्नति करेगा; इसके यशः सौरभ से दशों दिशाएँ सौरभित हो जायँगी। समय पाकर परीक्षक की भविष्यवाणी सोलहों आने सत्य प्रमाणित हुई।

नेपोलियन को उस समय थोड़ा ही वेतन मिलता था, उसी से वह अपना तथा अपने परिवार का पालन करता। वह बड़ा मितव्ययी था। उसके कमरे में दो कुर्सियों तथा बिस्तर के अतिरिक्त और कुछ सामान न रहता था। वह भोजन स्वयं ही बनाता और दिन में केवल एक बार लगभग तीन बजे खाता था। इस बीच में भी नेपोलियन को जब छुट्टियाँ मिलतीं तो वह उन्हें व्यतीत करने के लिए कोर्सिका चला जाता था।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

बचपन से ही नेपोलियन की धारणा कोर्सिका को .फ्रान्स की अधीनता से विमुक्त कर उसकी दासत्वशृंखला काटने की रही थी। वह अपनी इस हार्दिक कामना को कार्यरूप में परिणत करने के लिए उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा में रहता था। उसने कोर्सिका में स्वयं सेवकों को संगठित कर एक सेना बनाई, जिसका कर्नल वह स्वयंनियुक्त किया गया। नेपोलियन को इस स्वयंसेवक-सेना की देख-भाल के लिए बार-बार कोर्सिका जाना पड़ता था। परिणाम यह हुआ कि अपने काम पर प्रायः अनुपस्थित रहने के कारण वह सेना से पृथक् कर दिया गया। नौकरी छूट जाने पर नेपोलियन पेरिस में एक कमरा किराये पर लेकर रहने लगा। वहाँ उसे घोर आर्थिक संकट का सामना करना पड़ता था, परन्तु वह घबराता न था। नेपोलियन स्वल्प व्यय में जीवन निर्वाह करता हुआ अपना समय पुस्तकों के अध्ययन तथा पेरिस के प्रतिष्ठित पुरुषों से मिलने-जुलने में व्यतीत करता था। यद्यपि इस समय उसे अपने मित्र बोरीन से भोजन-व्यय की सहायता मिल जाती थी, परन्तु फिर भी कभी-कभी उसे अपनी चीज़ें बेच कर भोजन की व्यवस्था करनी पड़ती थी। एक बार तो होटल वाले का बिल उसे अपनी घड़ी बेचकर चुकाना पड़ा था।

इधर .फ्रांस की शासन-सत्ता क्षीण होती जा रही थी। उसकी निर्बलता देख जनता में क्रान्ति की भयङ्कर आग धधक उठी। चारों ओर प्रजातन्त्रवाद के गीत गाये जाने लगे। क़ानूनों को सब के लिए समान रूप से व्यवहृत करने की आवाज़ें गूँजने लगीं और पूँजीपतियों तथा सामन्तों ने देश छोड़कर भागना प्रारम्भ कर दिया। वहाँ के राजा को राजभवन में बन्दी बना लिया गया और तीस हज़ार प्रदर्शनकारियों के विराट् समुदाय ने उसके अन्तर्भवन पर आक्रमण कर उसे प्रजातन्त्र के चिह्न स्वरूप लाल टोपी पहने के लिए बाध्य किया। ये सब उपद्रव होते हुए

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

भी सैनिक चुपचाप तमाशा देखते रहे। इस प्रकार की अराजकता देख नेपोलियन के हृदय में सैनिकों की कायरता तथा प्रजा की क्रूरता के प्रति बड़ा क्षोभ उत्पन्न हुआ। उसने समझ लिया कि फ्रांस के लोग निकम्मे और अयोग्य हैं; उन्हें ठीक रास्ते पर लाने के लिए किसी योग्य एवं प्रभावशाली व्यक्ति की अत्यन्त आवश्यकता है।

१७९२ ई० में नेपोलियन कोर्सिका चला आया। वहाँ आकर उसने देखा कि उसके देश का नेता पवाली क़ौमी ग़द्दार बना हुआ है और कोर्सिका को कुछ रुपये के लालच से इंगलैण्ड के हाथों बेच देना चाहता है। उसने नेपोलियन को भी इस सौदे में सम्मिलित होने का प्रलोभन दिया, परन्तु नेपोलियन उसके जाल में न फँसा। इस पर पवाली चिढ़ गया और उसने कुछ पहाड़ी लोगों को उत्तेजना देकर नेपोलियन के निवास-स्थान पर आक्रमण करा दिया जिसके कारण नेपोलियन के परिवार को अपने प्राण लेकर रात में एक नाव पर सवार होकर भागना पड़ा। कोर्सिका निवासियों की इस प्रकार कृतघ्नतापूर्ण कुत्सित मनोवृत्ति देख नेपोलियन को मर्मान्तक वेदना पहुँची, और तब से वह मातृ-भूमि की ममता छोड़ फ्राँस में आकर बस गया। वास्तव में कोर्सिका-वासियों का बड़ा दुर्भाग्य था जो उन्होंने स्वदेश के लिए अनेक प्रकार के अत्याचार एवं अपमान सहन करने वाले, स्वाधीनता के पुजारी नेपोलियन की अवहेलना की जिससे उसकी देशभक्ति का प्रवाह स्वदेश से हटकर फ्राँस की ओर हो गया।

नेपोलियन बार-बार छुट्टियाँ लेकर कोर्सिका क्यों जाया करता था, इसका कारण अब उसने अपने अफ़सरों पर प्रकट कर दिया। फलतः वह फिर अपने पूर्व पद पर नियुक्त कर दिया गया। इस समय फ्रांस की राजनैतिक परिस्थिति बड़ी जटिल हो गई थी; शत्रुओं ने उसे हड़पने के लिए चारों ओर से आक्रमण करने प्रारम्भ कर दिए थे। इँगलैण्ड ने तो टूलोन नामक नगर को अपने अधिकार में भी

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

कर लिया था। ऐसी दशा में फ़्राँस-सरकार नेपोलियन को टूलोन भेजा। वहाँ पहुँच कर उसने दिन-रात अनवरत परिश्रम किया। उसकी वीरता, कार्य-तत्परता तथा प्रोत्साहन परक वक्तृताओं से सैनिकों के हृदय में असीम साहस का संचार होने लगा, जिसका फल यह हुआ कि उन्होंने शीघ्र ही अँग्रेजी नौ-सेना को खदेड़ कर टूलोन पर पुनः फ़्राँस का आधिपत्य स्थापित कर दिया।

टूलोन में सफलता प्राप्त करने से नेपोलियन का बड़ा सम्मान हुआ। सब लोग उसकी कार्य-पटुता एवं रण-कुशलता की प्रशंसा करने लगे। वहाँ के फ़ौजी अफ़सर ने तो नेपोलियन को उन्नति का अवसर देने के लिए बड़े जोरदार शब्दों में कमाण्डर से सिफ़ारिश की। इसके पश्चात् नेपोलियन को जनरल 'डूगोमियर' के साथ मार्सेल्स भेजा गया। यहाँ लोगों ने नेपोलियन का छोटा-सा क़द और उसकी स्त्रियों जैसी मुखाकृति देख कर उसे एक साधारण अफ़सर समझा, परन्तु जब जनरल डूगोमियर द्वारा उन्हें उसके नाम और टूलोन विजय के महान् कार्य का परिचय दिया गया तो वे बड़े आश्चर्यान्वित हुए।

नेपोलियन की असाधारण कार्य-कुशलता एवं वीरता देखकर फ़्रांस-सरकार ने १७९४ ई० में उसे ब्रिगेड का जनरल बना दिया। परन्तु किसी ईर्ष्यालु व्यक्ति से उसकी यह उन्नति न देखी गई और उसने नेपोलियन पर सरकार के प्रति विद्रोहात्मक विचार रखने का झूठा आरोप लगाकर उसे कारागार में बन्द करा दिया। किन्तु थोड़े ही दिनों में निर्दोष साबित होने पर वह छोड़ दिया गया। इसके अनन्तर नेपोलियन को पश्चिमी मोर्चे पर युद्ध करने के लिए जाने की आज्ञा मिली, परन्तु वह वहाँ किसी विशेष कारण से जाना नहीं चाहता था, अतः उसने इस आज्ञा को अस्वीकार कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि उसे फ़ौज से फिर पृथक् कर दिया गया।

CC0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

परन्तु इस दशा में वह बहुत दिनों नहीं रहा। शीघ्र ही फ्रांस-सरकार को उसकी सेवाओं की पुनः आवश्यकता अनुभव होने लगी। कारण यह था कि उस समय कनवेंशन (फ्रांस की पार्लियामेण्ट) ने एक ऐसा क़ानून बनाया था जो जन-हित के विरुद्ध था। इसके फलस्वरूप जगह-जगह षड्यन्त्र रचे जाने लगे। विद्रोह की दबी हुई आग के पुनः भड़क उठने की पूरी आशङ्का होने लगी। ऐसी विकट स्थिति पर नियन्त्रण रखने और कनवेंशन की रक्षा करने के लिए बैरास नाम का एक व्यक्ति फौज का जनरल नियुक्त किया गया। बैरास पहले तो इतने उत्तरदायित्व पूर्ण काम को अपने हाथ में लेने से घबराया, परन्तु पार्लियामेण्टभवन की गैलरी में नेपोलियन को देखकर वह एकदम चिल्ला उठा—'यहाँ एक ऐसा व्यक्ति है जो हम सब की इस सङ्कटापन्न परिस्थिति में रक्षा कर सकता है। मैं उसका साहस तथा रणचातुर्य टूलोन में ख़ूब देख चुका हूँ।' बैरास के यह कहने पर नेपोलियन को कनवेंशन के समक्ष उपस्थित किया गया परन्तु उसका पतला दुबला शरीर, पिचके गाल और छोटा क़द देखकर कनवेंशन के सदस्यों को बड़ा आश्चर्य हुआ। वे लोग नेपोलियन को कोई बड़ा विशालकाय, हृष्ट-पुष्ट व्यक्ति समझ रहे थे। प्रेसीडेण्ट ने नेपोलियन से पूछा—'क्या तुम कनवेंशन की रक्षा करने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेने को तैयार हो, और क्या तुम इस महत्त्वपूर्ण कार्य का सफलता-पूर्वक सम्पादन कर सकोगे?' नेपोलियन ने तुरन्त स्वीकृति देते हुए कहा 'मैं जिस काम को अपने हाथ में लेता हूँ, वह कितना ही कठिन क्यों न हो परन्तु उसमें निश्चय ही सफलता प्राप्त करता हूँ।' इस प्रश्नोत्तर के पश्चात् नेपोलियन को सेना का सर्वाधिकार दे दिया गया।

कनवेंशन की रक्षा का महान् काम अपने ऊपर लेकर नेपोलियन तुरन्त इस दिशा में जी-जान से जुट गया। वह दिन-रात

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

घूमकर सब कामों को स्वयं देखता और सैनिकों को भावी सङ्कट का सामना करने के लिए वक्तृताओं द्वारा प्रोत्साहन देता था। उसने चारों ओर से तोपें मँगवाकर उन्हें ट्यूलरीज़ (फ्रान्स का राज भवन और पार्लियामेण्ट भवन) के प्रत्येक मोर्चे पर रखवाने की व्यवस्था कर दी। इधर विद्रोहियों का दल कनवेंशन तथा राज-भवन का विध्वंस कर नरमेध यज्ञ करने के लिए उतावला हो रहा था। जैसे ही उस समूह में से किसीने बन्दूक छोड़ी वैसे ही नेपोलियन ने सैनिकों को तोपों में फ़लीते लगा देने की आज्ञा दे दी। फिर क्या था? गड़गड़ाहट और धूँ-धाँय की आवाज़ों से दशों दिशायें विकम्पित होने लगीं, सर्वत्र आतङ्क छा गया और उपद्रव-कारियों की भीड़ से पेरिस की सड़कें बात की बात में साफ़ हो गईं। इस प्रकार नेपोलियन ने केवल ट्यूलरीज़ की ही रक्षा नहीं की अपितु समस्त फ्रांस के ऊपर से एक महान् सङ्कट को टाल दिया। इस सफलता से सब लोगों पर नेपोलियन की योग्यता तथा वीरता का सिक्का बैठ गया और वह शीघ्र ही फ़ौज का सब से बड़ा अफ़सर (चीफ़ कमाण्डर) बना दिया गया।

विद्रोहियों का दमन करने के पश्चात् पेरिस के कितने ही मकानों की हथियारों के लिए तलाशी ली गई। उस समय किसी फ़ौजी की विधवा स्त्री, जौसेफ़ीन के घर में एक तलवार मिली जो वहाँ से हटा ली गई। जौसेफ़ीन को अपने स्वर्गीय पति की इस निशानी के छीने जाने से बड़ा दुःख हुआ। दूसरे दिन उसने अपने पुत्र को तलवार वापस माँगने के लिए भेजा तो नेपोलियन ने उदारता-पूर्वक उसे तलवार लौटा दी। उसकी इस कृपा के लिए जौसेफ़ीन बड़ी उपकृत हुई और वह स्वयं नेपोलियन को धन्यवाद देने के लिए पहुँची। नेपोलियन, जौसेफ़ीन के रूप-माधुर्य को देखकर मुग्ध हो गया। वह उससे जनरल 'बैरास' के निवास स्थान पर मिलने जाने लगा और थोड़े दिनों में बैरास की सम्मति से

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

नेपोलियन ने जोसेफ़ीन के साथ विवाह कर लिया।

बड़े-बड़े संकटों को बातों ही बातों में टाल देने का नेपोलियन में अद्भुत गुण था। एक दिन जब पेरिस में अशान्ति फैली हुई थी तो एक मछेरे की मोटी-ताज़ी स्त्री सरकार के विरुद्ध बड़ा उत्तेजनापूर्ण भाषण दे रही थी। उस समय नेपोलियन तथा कुछ सैनिक वहाँ पहुँचे तो श्रोता-समुदाय घबराने लगा। यह दशा देखकर भाषण देनेवाली स्त्री ने कहा 'सैनिकों को देखकर घबराने की आवश्यकता नहीं है। वे लोग ग़रीबों की किंचित परवा नहीं करते प्रत्युत उनका रक्त चूँस-चूँस कर मोटे होते जाते हैं। यह सुनकर नेपोलियन आगे बढ़ा और बोला—'श्रीमतीजी, तनक मेरे और अपने शरीर का मिलान तो कीजिए और फिर बताइए हम दोनों में कौन अधिक मोटा है।' नेपोलियन की इस सामयिक एवं उचित उक्ति से भाषण देने वाली महिला लज्जित हो गई; उपस्थित समुदाय हँस पड़ा और भयङ्कर विद्रोह के बादल छिन्न-भिन्न हो गए।

१७९६ ई० में नेपोलियन इटली की सेना का अधिनायक बनाया गया। उस समय इटली का एक भाग आस्ट्रिया के अधीन था। नेपोलियन की नियुक्ति के समय डाइरेक्टरों को एक ओर भावी भीषण संघर्ष और दूसरी ओर नेपोलियन की युवावस्था देखकर यह आशंका होने लगी कि स्यात वह इतने गुरुतर कार्य को सम्पन्न करने में समर्थ न हो सकेगा। किन्तु धुन के पक्के, कर्मनिष्ठ नेपोलियन ने शीघ्र ही सफलता प्राप्त कर सबको आश्चर्य-चकित कर दिया।

जब नेपोलियन ने इटली की ओर कूच किया तो उसकी सेना के अफ़सर एक नवयुवक की अध्यक्षता में रहने के कारण बड़े असन्तुष्ट थे। इधर सैनिक भी प्रसन्न नहीं थे क्योंकि उनके खाने-पीने तथा कपड़ों की कोई उचित व्यवस्था नहीं थी। इस पर भी

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

सरकार ने इस दिशा में अधिक व्यय करने की असमर्थता प्रकट कर दी थी। ऐसी स्थिति में नेपोलियन अपनी अनुपम बुद्धिमत्ता से सबको संतुष्ट करता तथा प्रोत्साहन देता हुआ निर्दिष्ट स्थान पर जा पहुँचा। नेपोलियन की खून खौला देने वाली वक्तृताएँ सैनिकों पर जादू का काम करती थीं और वे बड़े उत्साह पूर्वक 'विजय या मृत्यु' का सिद्धान्त हृदयङ्गम करके समराङ्गण में पदार्पण करते थे। इसका फल यह हुआ कि कई घोर घमासान युद्धों के अनन्तर आख़िर आस्ट्रिया वालों के पैर उखड़ गए और उन्हें सन्धि करने के लिए बाध्य होना पड़ा। इस प्रकार विजयश्री लाभ करके नेपोलियन फ़्रांस पहुँचा। वहाँ उसका बड़ा भारी स्वागत किया गया।

आस्ट्रिया पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् नेपोलियन को इँगलैण्ड से मोर्चा लेने के लिए नियुक्त किया गया। उस समय इँगलैण्ड की शक्ति बहुत बढ़ी हुई थी; वह फ़्रांस को अपने अधीन करने के लिए कटिबद्ध था। नेपोलियन ४०० जहाज़ और ३८००० सैनिकों सहित चल पड़ा। इधर भूमध्यसागर के विशाल वक्षस्थल पर अँग्रेज़ सेनापति वीर नेलसन फ़्रेंच सेना पर आक्रमण करने के लिए चक्कर काट रहा था। परन्तु नेपोलियन उससे बच कर निकल गया और उसने ऐलेक्ज़ैण्ड्रिया पर कब्ज़ा कर केरो (मिस्र) पर चढ़ाई कर दी। केरो की विजय नेपोलियन को बड़ी मँहगी पड़ी। वहाँ उसे भयङ्कर यातनाओं का सामना करना पड़ा; उसके कितने ही सैनिकों की जीवन लीला रेगिस्तान की प्रचण्ड गर्मी तथा पानी के अभाव के कारण मार्ग में ही समाप्त हो गई। इसी अवसर पर टर्की द्वारा उठाया गया उपद्रव दबाने के लिए उसे सीरिया पर आक्रमण करना पड़ा और अगणित सैनिकों का संहार कर अन्त में उसने टर्की पर विजय पाई।

नेपोलियन की अनुपस्थिति में फ़्रांस में फिर गड़बड़ी मच

CC0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

गई। सरकार के मूर्खतापूर्ण कार्यों से लोग फिर असन्तुष्ट होने लगे। उधर इटली से .फ्रेंच सेना निकाल दी गई थी और शत्रुओं ने .फ्रान्स पर आक्रमण करने के विचार से एक संगठन बना लिया था। यह ख़बर पाकर नेपोलियन तुरन्त .फ्रांस के लिए चल पड़ा और मार्ग में अपनी जन्म-भूमि कोर्सिका के अन्तिम बार दर्शन करता हुआ वहाँ आ पहुँचा। नेपोलियन के सकुशल लौट आने पर पेरिस में बड़ा हर्ष मनाया गया और इस उपलक्ष्य में समस्त नगर में रोशनी की गई। .फ्रांस की तत्कालीन राजनैतिक परिस्थित जैसी जटिल हो रही थी उसे देखकर लोग भयभीत थे और हृदय से यह चाहते थे कि शासन-सत्ता ऐसे किसी व्यक्ति के हाथों में चली जाय जो उनकी हर प्रकार से रक्षा कर देश में शान्ति स्थापित कर सके। स्वभावतः उनकी दृष्टि इस काम के लिए नेपोलियन के ऊपर थी। नेपोलियन जनता की मनोवृत्ति को अच्छी तरह जान गया और उसने इस अवसर से लाभ उठाने का पक्का विचार कर लिया।

नेपोलियन ने .फ्रांस की शासन-सत्ता को पलट देने के विचार से कुछ अन्तरङ्ग मित्रों के साथ गुप्त मंत्रणा की और उसके अनुसार सरकार के विरुद्ध एक भीषण षडयंत्र रचे जाने की कल्पित सूचना कौंसिल को दी गई। इस गम्भीर प्रश्न पर विचार करने के लिए दूसरे दिन दोनों कौंसिल की मीटिङ्गें बुलाई गईं और उनकी रक्षा का कार्य-भार नेपोलियन को सौंपा गया। बड़ी कौंसिल ने षड्-यंत्र का जब पूर्ण विवरण माँगा तो नेपोलियन ने कौंसिल-भवन में प्रवेश कर बड़ी सनसनीपूर्ण वक्तृता दी और तदुपरान्त वह छोटी कौंसिल की ओर गया। परन्तु वहाँ उसका प्रवेश रोक दिया गया और सब सदस्य उस पर थप्पड़ों और मुक्कों का प्रहार करने लगे। नेपोलियन मूर्छित हो गया; उसके मुँह से .खून निकलने लगा और उसके सब कपड़े फट गए। उस समय नेपोलियन का छोटा भाई,

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

लूसियन छोटी कौंसिल का सभापति था। वह तुरन्त भवनसे बाहर आया और उसने सैनिकों के समक्ष उत्तेजनापूर्ण भाषण देकर उन्हें बतलाया कि नेपोलियन के जीवन को खतरे में देखकर मैंने उसे सभा में प्रवेश करने से रोका था। कौंसिल पर दुष्ट लोगों ने अधिकार कर रक्खा है और वे नेपोलियन के प्राण लेने के लिए तैयार बैठे थे। यह सुन कर सैनिक सरोष कौंसिल-भवन में घुस पड़े, परन्तु सब सदस्य दरवाज़ों और खिड़कियों में होकर भाग गए। इस घटना के पश्चात एक क़ानून पास हुआ जिसके अनुसार फ्रांस का शासन करने के लिए तीन काउन्सलर नियुक्त हुए जिनमें एक नेपोलियन भी था। इस प्रकार देश की शासन सत्ता अब नेपोलियन ने अपने हाथ में लेली।

१८०० ई० में नेपोलियन ने दुरूह एल्प्स पर्वत माला को पार कर इटली पर आक्रमण किया और वहाँ विजय प्राप्त की। इधर जर्मनी इँगलैण्ड आदि देशों से सन्धि हो जाने के कारण एक प्रकार से युद्ध समाप्त हो गया था। अब नेपोलियन का ध्यान फ्रांस की आन्तरिक अवस्था सुधारने और रचनात्मक कार्य करने की ओर आकृष्ट हुआ। उसने वहाँ दलबन्दी के दुर्ग तथा 'पार्टी पोलिटिक्स' का विनाश कर एकता का बीज वपन किया और देश से भागे हुए पूँजीपतियों तथा सामन्तों को वापस आने की आज्ञा दे दी। नेपोलियन का व्यवहार सबके साथ उदार और समान था। उसने सर्व साधारण में धार्मिक स्वतन्त्रता की घोषणा कर, गिर्जाघरों के पुजारियों को राज्य की ओर से वेतन देने की व्यवस्था कर दी। विद्वानों और वीर सैनिकों के सम्मानार्थ उसने 'लीजन आव ऑनर' नाम की एक संस्था स्थापित की। इसके अतिरिक्त शासन-प्रबन्ध की सुव्यवस्था करने के लिए बहुत से क़ानूनों में संशोधन, परिवर्त्तन एवं परिवर्धन किया। नेपोलियन विद्यार्थी-जीवन से ही शिक्षा-प्रसार का साधक था, अतः इस अवसर पर अपनी साधना के

CC0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पूर्त्यर्थ उसने बहुत से स्कूल खुलवाए और जनता के हितार्थ नहर, सड़क आदि बनवाने के सार्वजनिक काम किए।

नेपोलियन की उन्नति देखकर कुछ नीच प्रकृति के लोग उससे ईर्ष्या करते थे। इन्होंने नेपोलियन के प्राण लेने के लिए अनेक षड्यंत्र रचे, परन्तु पुलिस द्वारा भण्डा फोड़ होने पर अपराधियों को उचित दण्ड दिया गया। इस प्रकार अनेक विघ्नबाधाएँ नेपोलियन के मार्ग में आईं, परन्तु वे सब पानी के बुल-बुलों की भाँति नष्ट होती गईं। अन्ततः १८०४ ई० में उसके हाथों में बड़े समारोह पूर्वक शासन-सूत्र सौंपा गया और ३५ वर्ष की अवस्था में वह फ्रांस का सम्राट घोषित किया गया। इसी अवसर पर जोसेफ़ीन के साथ उसका धार्मिक रीति से वैवाहिक कृत्य भी सम्पन्न हुआ।

अब नेपोलियन की हार्दिक अभिलाषा अपने साम्राज्य को सुसंगठित करने की थी, परन्तु शत्रुओं ने उसे स्थिर बैठने ही नहीं दिया। इँगलैण्ड फ्रांस की व्यापारिक उन्नति देखकर जलता था, अतः उसने रूस, आस्ट्रिया तथा स्वीडन को उसके विरुद्ध भड़का कर एक संघ बना लिया। इन सबने पाँच लाख सैनिकों की विशाल वाहिनी एकत्र कर फ्रांस पर चुपचाप चतुर्दिक् आक्रमण करने की योजना बनाई। ८०००० की एक सेना तो आक्रमण करने के लिए भेज भी दी गई। परन्तु राजनीति-विशारद नेपोलियन तुरन्त इस चाल को समझ गया। उसने अपने बहुसंख्यक सैनिकों सहित राइन तथा डेन्यूब नदियों को पार कर शत्रु-सेना को घेर लिया, इससे सब लोग आश्चर्य-चकित रह गए। फ्रांस पर आक्रमण करने वाली सेना अपने को चारों ओर से घिरा देखकर युद्ध किए ही आत्मसमर्पण करने को उद्यत हो गई। इस घटना से आस्ट्रिया का सम्राट बड़ा भयभीत हुआ और वह देश छोड़कर भाग गया। कुछ दिनों पश्चात् उसने नेपोलियन से सन्धि करली।

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

इसके अनन्तर मित्रसंघ में प्रशिया का सम्राट् भी सम्मिलित हो गया और उसने नेपोलियन को युद्ध का अल्टीमेटम देकर फ्रांस पर धावा बोल दिया। परन्तु अन्त में वह अपने २००० सैनिकों को खोकर रूस की शरण में चला गया। नेपोलियन ने प्रशिया के सब क़िलों पर अधिकार कर लिया और तदनन्तर वह रूस की ओर बढ़ा। रूसी सेना भी एल्यू तथा फ़्रीडलैण्ड के मैदानों में बुरी तरह से पराजित होकर भाग गई और रूस के सम्राट् ने नेपोलियन का लोहा मान उससे सन्धि कर ली जो टिलसिट की संधि के नाम से प्रसिद्ध है।

अब नेपोलियन को केवल इँगलैण्ड के ऊपर विजय प्राप्त करनी शेष रह गई थी। इस कार्य में सफलता पाने के अभिप्राय से उसने इँलैगण्ड के व्यापार को नष्ट कर उसके सामने आर्थिक सङ्कट उपस्थित कर देना उचित समझा। तदनुसार उसने अपने अधिकृत देशों में इँगलैण्ड के माल का बायकाट करने की घोषणा कर दी। इस बीच में पोर्चुगाल और स्पेन ने इँगलैण्ड का पक्ष लेकर सर उठाया, परन्तु नेपोलियन ने उन दोनों को भी रगड़ कर अपना मार्ग निष्कंटक बना लिया। इधर 'सींते थे आस्तीन गरेबान फट गया'—आस्ट्रिया ने नेपोलियन को स्पेन के साथ युद्ध में व्यस्त देख कर सन्धि भंग कर दी और वह पुनः युद्ध करने के लिए सन्नद्ध हो गया। नेपोलियन ने आस्ट्रिया की इस घातक नीति का उसे कई स्थलों पर पराजित कर प्रतिकार तो खूब किया परन्तु 'रेटिजवन' का घेरा करते समय जब वह खड़ा हुआ अपने एक सैनिक से वार्तालाप कर रहा था, तो किसीने उसकी टाँगों में गोली मार दी और वह आहत होकर गिर पड़ा। इस दुर्घटना का समाचार विद्युद्गति से चारों ओर फैल गया; सब सैनिक अपने प्यारे सम्राट् की दशा देखने के लिए आतुर हो घटनास्थल पर दौड़ आए; सर्जन ने आकर मरहम पट्टी की। यद्यपि इस समय नेपो-

CC0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

लियन को असह्य वेदना हो रही थी तथापि उसकी किंचित् चिन्ता न कर वह तुरन्त घोड़े पर सवार होकर इधर-उधर घूमने लगा और उसने सैनिकों को यथास्थान चले जाने की आज्ञा दी। उसे सन्देह था कि सबको एक स्थान पर एकत्र देख कहीं आस्ट्रिया वाले तोप द्वारा कर उनका विध्वंस न कर दें। आस्ट्रिया के सम्राट् ने फ्रेंच सेना की गतिविधि देखकर पुनः नेपोलियन से सन्धि करली और अब की बार उसने अपनी पुत्री 'मेरिया लुइसा' का विवाह भी उसके साथ कर दिया। नेपोलियन भी इस सम्बन्ध के लिए इच्छुक था। इसका कारण यह था कि उसकी पहली स्त्री जोसेफ़ीन से कोई सन्तान नहीं थी, अतः उसका वंश आगे चलने की सम्भावना न रह गई थी। इस नये सम्बन्ध के पश्चात् नेपोलियन ने जोसेफ़ीन को तलाक़ दे दिया।

इँगलैण्ड के माल का बायकाट करने के कारण यूरोप के प्रायः सभी देशों को और मुख्यतः रूस को भारी हानि उठानी पड़ रही थी, अतः ऐसी दशा में रूस के सम्राट ने नेपोलियन की आज्ञा के विरुद्ध घोषणा कर दी। नेपोलियन ने उसे दण्ड देने के लिए छह लाख सैनिक लेकर रूस पर धावा बोल दिया और उसे पराजित कर राजधानी मास्को में प्रवेश किया; परन्तु वहाँ दिन में उल्लू बोल रहे थे; मास्को-निवासी अपनी फ़सलों को नष्ट करके भाग गए जिससे कि फ्रेंच सेना को खाद्य सामग्री के अभाव में शीघ्र ही लौट जाने के लिए विवश होना पड़े। वास्तव में हुआ भी ऐसा ही। रसद की कमी और रूस के प्रचण्ड शीत के कारण नेपोलियन को वहाँ से लौटना ही पड़ा। उसके बहुत से सैनिक क्षुधा और हिमपात के प्रकोप से मार्ग में ही नष्ट हो गए। इस पर भी पीछे से रूसी सेना ने उनके ऊपर आक्रमण कर दिया। जिससे उनकी बहुत क्षति हुई।

पेरिस वापस आते न आते शत्रुओं ने फिर उसके विरुद्ध अपना

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

संगठन सुदृढ़ कर .फ्रांस पर चारों ओर से आक्रमण करने प्रारम्भ कर दिए। इस अवसर पर भी नेपोलियन ने अपनी स्वाभाविक वीरता से काम लिया; उसने शत्रु-सेनाओं को कई स्थानों पर पराजित किया, परन्तु अन्त में उनकी संख्या अधिक होने और .फ्रेंच सेना के अन्यमनस्क भाव से युद्ध करने के कारण उसे 'लिपज़िग' के युद्ध में हार खानी पड़ी। इस अवसर पर उसके कितने ही सैनिकों ने विश्वासघात करके शत्रु-सेना में सम्मिलित हो अपनी मलिन-मनोवृत्ति का परिचय दिया। इस समय वास्तव में इन ग़द्दारों ने नेपोलियन के विमल विजयी जीवन पर पराजय की कलंक-कालिमा लगा दी। अब क्या था, शत्रुओं की सेना ने पेरिस पर अधिकार कर लिया; उधर .फ्रांस-सीनेट ने नेपोलियन को सम्राट् पद से च्युत करने की घोषणा कर दी और यह भी निर्णय कर दिया कि वह ऐल्बा द्वीप का अधिकारी बनकर अपना जीवन निर्वाह करे। इस प्रकार विश्व-विजय के स्वप्न देखने वाले वीर नेपोलियन की उच्च अभिलाषा छोटे से द्वीप के दायरे में सीमित कर दी गई और उसे बन्दी होकर रहना पड़ा।

सम्राट् का पद त्याग कर नेपोलियन के विदा होने का दृश्य बड़ा ही हृदयविदारक एवं करुणोत्पादक था। उसने सेना के झण्डे को चूमा, सैनिकों को गले लगाया और फिर उन्हें अन्तिम अभिवादन कर ऐल्वा के लिए प्रस्थान किया। इस असह्य वियोग-वज्राघात के कारण सैनिकों के नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बह रही थी और नेपोलियन भी दुःखातिरेक से व्याकुल हो, हाथों से मुँह ढके हुए गाड़ी में सवार हो रहा था।

नेपोलियन के पश्चात् अठारहवाँ लुई .फ्रांस का सम्राट् बना, परन्तु उसका शासन अधिक दिनों तक न रह सका। उसने नेपोलियन के पूर्व कालीन सम्राट् की नीति का अवलम्बन किया जिसके कारण पहले ही प्रजा में भयङ्कर क्रान्ति की आग भड़क चुकी थी।

CC0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अब उसी विघातक पद्धति की पुनरावृत्ति होते देख प्रजा में भयानक क्रान्ति की भावना भड़क उठना स्वाभाविक ही था। फल यह हुआ कि लोगों के हृदय में वर्त्तमान सम्राट् के प्रति अश्रद्धा एवं असंतोष के भाव जाग्रत हो उठे और उन्हें नेपोलियन की अनुपस्थिति बुरी तरह खटकने लगी। नेपोलियन ने फ्रांस में फैली हुई अशान्ति का समाचार पाकर इस अवसर से लाभ उठाना चाहा। वह शीघ्र ही आँख बचा कर ऐल्बा से फ्रांस के लिए चल पड़ा। उसके पेरिस में प्रवेश करने पर जनता तथा सैनिकों ने उसका हृदय से स्वागत किया। लुई उसके आने से पूर्व ही तख्त छोड़ कर भाग गया था।

नेपोलियन फिर एक बार फ्रान्स के सम्राट्-पद पर आरूढ़ हो गया, परन्तु उसकी यह सफलता 'चिराग़े-सहरी' की भाँति शीघ्र ही समाप्त होगई। उसके शत्रु चारों ओर से उस पर टूट पड़े और उन्होंने उसे 'वाटरलू' के प्रसिद्ध युद्ध में बुरी तरह से परास्त कर दिया। नेपोलियन की सारी शक्ति छिन्न-भिन्न होगई और उसे अँग्रेजों के सम्मुख आत्मसमर्पण करने के लिए विवश होना पड़ा।

नेपोलियन को आशा थी कि उसके साथ न्याय किया जायगा, परन्तु उसकी यह आशा दुराशा मात्र ही सिद्ध हुई। इङ्गलंएड-सरकार ने उसे बन्दी बना कर अटलांटिक महासागर-स्थित सेण्ट हेलीना द्वीप में भेज दिया। वहाँ अँग्रेज अधिकारियों ने उसके साथ अत्यन्त जघन्य एवं अमानुषिक व्यवहार किया, यहाँ तक कि उसे साधारण मानवीय अधिकारों से भी वञ्चित कर उसके हृदय को गहरी ठेस पहुँचाई।' अन्त में पराजित तथा अपमानित, वीरता की सजीव मूर्ति, नेपोलियन बोनापार्ट की जीवन-ज्योति भगवान् भास्कर की अन्तिम रश्मियों के साथ ५ मई १८२१ ई० को अस्त होगई।

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अब्राहम लिंकन

[अमरीका में लोकतन्त्र-शासन-पद्धति द्वारा शासन होता है। वहाँ वंश-परम्परागत कोई शासक नहीं है। प्रत्येक चुनाव के समय जनता द्वारा जो शासक चुना जाता है, वही वहाँ का शासक या अध्यक्ष अथवा राष्ट्रपति कहलाता है। अमरीका में भिन्न-भिन्न कितनी ही रियासतें हैं, इन रियासतों के शासक भी जनता द्वारा चुने हुए प्रतिनिधि होते हैं। इन्हीं प्रतिनिधियों द्वारा सर्वोपरि शासक अथवा अध्यक्ष का चुनाव होता है।]

अमरीका का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। १४६२ ई० में कोलम्बस ने इसकी खोज की। अमरीका का पता लगाये जाने पर वहाँ बसावट शुरू हुई। स्पेनिआर्ड, फ्रेञ्च तथा अँग्रेजों ने इस नई दुनिया में आकर अपना कार-बार प्रारम्भ किया। जिन लोगों ने अमरीका का जितना प्रदेश अपने अधीन कर लिया, उसकी संज्ञा राज्य, रियासत या संस्थान हुई। इन संस्थानों या रियासतों का शासन करने के लिए अमरीका प्रवासियों के मूल देशों से, वहाँ की सरकारों द्वारा नियुक्त प्रति-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

निधि आते रहे। ये शासक लोग प्रजा की अनुमति से ही अपना कार्य करते थे। उस समय इङ्गलैण्ड से आये हुए प्रवासियों की अमरीका में तेरह रियासतें थीं। इनका शासन करने के लिए इङ्गलैण्ड से अधिकारी आया करते थे और वे इङ्गलैण्ड की पार्लियामेंट द्वारा निश्चित क़ायदे-क़ानूनों के अनुसार ही शासन करते थे।

इस प्रकार बहुत दिनों तक अमरीका में इङ्गलैण्ड द्वारा शासन होता रहा और अमरीका के कारण इङ्गलैण्ड को लाभ भी अत्यधिक हुआ। परन्तु उसकी तृष्णा दिनोंदिन बढ़ती गयी और उसने ऐसे क़ानून बनाये जिनके कारण अमरीका-प्रवासी अँगरेज़ बिल्कुल ग़ुलाम बन जांय और बिना किसी 'ननु-नच' के उसके आदेशों को स्वीकार करते रहें। अमरीका-प्रवासी अँग्रेजों ने इङ्गलैण्ड की ऐसी चेष्टा देख कर इङ्गलैण्ड की सरकार से स्पष्ट कह दिया, कि हम लोग अपनी जन्म-भूमि इङ्गलैण्ड को अपरिमित धन-राशि प्रतिवर्ष देते हैं, उसके आदेश और शासन को भी स्वीकार करते हैं; परन्तु क्या कारण है कि वहाँ की पार्लियामेंट में हमारे प्रतिनिधि नहीं लिये जाते। अमरीका-प्रवासी अँगरेजों की यह उचित माँग इङ्गलैण्ड को अच्छी न लगी और उसने टालम-टूल की नीति से काम लेना शुरू किया। परिणाम असन्तोषजनक हुआ, यहाँ तक कि दोनों शक्तियों में लड़ाई तक की नौबत आगई और स्थान-स्थान पर भयङ्कर मोर्चे डट गये। अन्ततः अमरीका को ग़ुलाम बनाने वाली इङ्गलैण्ड की शासन सत्ता परास्त हुइ और १७८२ ई० से अमरीका स्वतन्त्र वायुमण्डल में विचरने लगा। तब से अब तक अमरीका स्वतन्त्र है, उस पर किसी शासन सत्ता का अधिकार नहीं है। वहाँ लोकतन्त्र शासन-प्रद्धति प्रचलित है। अमरीका के प्रथम

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अध्यक्ष जार्ज वाशिंगटन चुने गये। अब्राहम लिंकन लोक-निर्वाचित-अध्यक्ष-परम्परा के १६वें रत्न थे।

अब्राहम लिंकन का जन्म १२ फरवरी सन् १८०६ ई० को टामस लिंकन नामक एक निर्धन व्यक्ति के यहाँ हुआ। यह निर्धन व्यक्ति उत्तरीय अमरीका की केण्ट नामक रियासत का रहने वाला था। पढ़ना-लिखना कुछ न जानता था, केवल अपने हस्ताक्षर करना इसने सीख लिया था। महनत-मज़दूरी करके अपना पेट भरता था। टामस लिंकन के तीन पुत्र थे, जिनमें अब्राहम लिंकन द्वितीय पुत्र था। अब्राहम के माता-पिता थे तो निर्धन, परन्तु वे ईश्वर के बड़े भक्त थे, सत्य-धर्म में उन का अटल विश्वास था। अब्राहम में भी उन्होंने बचपन से ऐसे भाव भरने शुरू किये। अब्राहम लिंकन के बचपन में, उसकी जन्म-भूमि में बालकों की पढ़ाई-लिखाई की कुछ समुचित व्यवस्था न थी। वैसे भी अब्राहम के पिता को केंट की स्थिति अनुकूल प्रतीत न हुई, क्योंकि वहाँ उसकी जीविका का कोई उचित प्रबन्ध न था। अतएव वह १८१६ ई० में केंट प्रान्त से इण्डियाना चला गया।

इण्डियाना स्थान बड़ा ही सुन्दर तथा प्राकृतिक सौन्दर्य से परिपूर्ण था, परन्तु लिंकन का सौभाग्य-सूर्य्य यहाँ आकर भी उदय न हुआ। वह बराबर दारुण दरिद्रता का ही अनुभव करता रहा। सबसे बड़ी आपत्ति यह पड़ी कि उसकी स्त्री का क्षय रोग से देहान्त होगया। अपने सच्चे साथी को खोकर उस का धीरज छूटने लगा, पर ईश्वर-भक्त लिंकन ने अपनी पत्नी की वियोग-जन्य वेदना को बड़े साहस के साथ सहा। बालक अब्राहम भी अपनी ममतामयी माता के वियोग से बुरी तरह व्याकुल रहने लगा। परन्तु ज्यों-ज्यों दिवस बीतते गये, त्यों-त्यों

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

उसे परितोष व धैर्य होता गया। अन्ततः वह अपने अध्ययन में लगा। धार्मिक शिक्षा उसे अपने माता-पिता द्वारा प्रारम्भ से ही दी गई थी अतएव जीवन-भर उसका उसके हृदय पर प्रभाव बना रहा। 'पिलग्रिम्स प्रोग्रेस' नामक पुस्तक भी अब्राहम को बहुत पसन्द थी क्योंकि उसमें धर्म-नीति का ही विषय विशेष रूप से वर्णित है। वह जार्ज वाशिंगटन और बैंजमिन फ्रैंकलिन की जीवनियों को भी बड़ी श्रद्धा और लगन के साथ पढ़ता था। ईसाई नीति की कथाएँ भी उसे बहुत पसन्द थीं। इन पुस्तकों के पाठ ने अब्राहम के हृदय पर अमिट प्रभाव डाला और उसका जीवन एक तपस्वी तथा परोपकारनिष्ठ का जीवन बन गया।

अब्राहम की ज्यों-ज्यों आयु बढ़ती गई त्यों-त्यों उसका शरीर और मस्तिष्क भी पुष्ट होता गया, और उसमें वे सब गुण आते गये जिनका होना किसी महान् पुरुष के लिये आवश्यक होता है। उसके हृदय की सरलता और शुद्धता देखकर लोग बड़े प्रभावित होते तथा उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते थे। अब्राहम को असत्य से बड़ी घृणा थी, वह सदैव सत्य ही बोला करते थे। एक बार अपने शिक्षक से वह कोई पुस्तक पढ़ने लाए। पुस्तक वर्षा से ख़राब होगयी। अब्राहम ने अपने अध्यापक से स्पष्ट कह दिया कि आपकी किताब मेरी असावधानी के कारण मेह से खराब होगई है, मैं उसकी क़ीमत देने को तैयार हूं। परन्तु नक़द दाम मेरे पास नहीं है, आप उसके बदले में मुझसे कुछ काम करा लीजिये। इस स्पष्टवाद को शिक्षक ने पसन्द किया और पुस्तक के मूल्य के बदले में अब्राहम को शिक्षक के घोड़े के लिये तीन दिन तक घास खोदनी पड़ी। यह साधारण-सी घटना

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अब्राहम की सत्यवादिता, न्याय-निष्ठा एवं कर्तव्य-परायणता का ज्ञान कराने के लिये पर्याप्त है।

इस समय अब्राहम की आयु १७-१८ वर्ष के लगभग थी। वह रात-दिन महनत-मजदूरी करके अपना तथा अपने घरवालों का पेट भरा करता। रूखा-सूखा जो मिल जाता उसे बड़ी प्रसन्नता से खाता और फटे-पुराने वस्त्रों को खूब खुश होकर पहनता था। भयङ्कर प्रतिकूल परिस्थितियों में रहते हुए भी अब्राहम ने स्वाध्याय कभी न छोड़ा, वह निरंतर उच्च कोटि का साहित्य पढ़ता रहा। उसका अध्ययन काल-यापन या मनोरञ्जन के लिए नहीं होता था, बल्कि उसके पढ़ने-लिखने का उद्देश्य था जीवन-निर्माण। शरीर संघटन और चरित्र-निर्माण पर अब्राहम ने सदैव ध्यान रक्खा। मजदूरी के लिए उसने छोटी से छोटी कही जाने वाली सेवा को भी स्वीकार किया। अब्राहम को जिन लोगों के साथ सम्पर्क रखना होता था, वे बहुत ही साधारण कोटि के थे, उनमें से कितनों ही के आचार-विचार तो बड़े ही भ्रष्ट थे, परन्तु वह इन सब में रह कर भी उनके दुर्गुणों से निर्लिप्त रहता था। इसके विपरीत अब्राहम अपने साथियों पर अपना प्रभाव डालने की कोशिश करता था जिससे उनकी आदतें सुधरें और वे भलेमानस बनें।

इन दिनों अमरीका के मूल-निवासियों और पीछे से आकर बसे हुए श्वेत रंग वालों में परस्पर बड़ा मन-मुटाव रहता था। मूल-निवासियों के दल के दल अवसर पाकर गोरे उपनिवेशों पर आक्रमण करते और लूट-खसोट मचाते थे। इन निवासियों का नेता 'ब्लैक हाक' नामक एक व्यक्ति था। अन्त को उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में गोरी जातियों और मूल-निवासियों के

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

मध्य यह सन्धि हुई कि ये लोग अपने निवास-स्थान मिसिसिपी नदी के दूरस्थ तट पर ही रहें, उपनिवेशों में न आवें। ब्लैकहाक ने ऊपरी तौर पर यह बात मान ली, परन्तु ज्योंही उसका संघटन सुदृढ़ हुआ, त्योंही वह फिर नई बस्तियों पर हमले करने लगा। यह बात वहां की सरकार को बहुत बुरी लगी, अतः मूल-निवासियों के दल-दर्प को दबाने के लिये स्वयं-सेवकों की (वालंटियर की) सेना का विशेष रूप से संघटन किया गया। इस सेना में अब्राहम लिंकन भी सम्मिलित हुआ और उसने अल्प काल में ही सारी सैनिक शिक्षा सीख ली। यह इतना कुशल और लोक-प्रिय होगया कि सैनिकों के आग्रह से उस सेना का कप्तान बनाया गया। इस सेना ने बड़ी दृढ़ता और वीरता से अपना कार्य किया। परन्तु बिना पूरी सफलता प्राप्त किये पहली बार की संघटित सेना की अवधि समाप्त होने का समय आगया, जिससे वह तोड़ दी गई। दूसरी बार फिर स्वयं-सेवक-सेना संघटित की गई। अब्राहम ने भी प्रयत्न किया और वही इसका कप्तान चुना गया। इस सेना ने अपने प्रशंसनीय पराक्रम द्वारा मूल-निवासियों से बड़ी वीरतापूर्वक मुठभेड़ की। अन्त में गोरों को सफलता प्राप्त हुई और आए दिन के उपद्रव शान्त होगए। इसी बीच में अब्राहम की योग्यता और कार्य-पटुता पर प्रसन्न होकर लोगों ने उसे अपने संस्थान की शासन-समिति—काँग्रेस के लिए भी वोट दिये और उसे इस कार्य के लिये उपयुक्त समझा।

अब्राहम जिस प्रान्त में रहता था, उसकी व्यवस्थापिका सभा के संघटन का समय आया। सरवागमन प्रान्त की ओर से जनता द्वारा बहुमत से नौ प्रतिनिधि चुने गये। इनमें एक अब्राहम लिंकन भी था। लिंकन अपनी व्यवस्थापिका सभा

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

में बड़ी निर्भीकता एवं निस्पृहता से भाषण करता और प्रत्येक लोकोपकारी कार्य्य का पूर्ण समर्थन करता। व्यवस्थापिका परिषद् में पहुँच कर अब्राहम ने क़ानून और राजनीति का भी बड़ी तल्लीनता से अध्ययन किया और वह उसका अच्छा ज्ञाता होगया। ११३७ ई० में उसने बाक़ायदा वकालत पास कर ली। इस समय व्यवस्थापिका सभा का पुनः निर्वाचन हुआ। इसमें भी अब्राहम भारी बहुमत से चुना गया। वकील होने पर लिंकन ने मेजर स्टुअर्ट के साथ वकालत शुरू की।

वकालत करते हुए भी लिंकन ने कभी असत्य का व्यवहार नहीं किया। वह बराबर सत्य के प्रयोग करता रहा। कोई झूंठा अभियोग उसके पास आता तो वह उसे धन के लालच से कभी न लेता। एक ख़ून के मुकदमे में उसने तथा उसके साथी ने वकील होना स्वीकार कर लिया। परन्तु जब मुकदमे के बीच में लिंकन को ज्ञात हुआ कि अभियोग सही है, अभियुक्त ने ख़ून अवश्य किया है, तो अब्राहम उसकी पैरवी से तटस्थ हो बैठा। उसका साथी मेजर स्टुअर्ट बराबर ख़ूनी के बचाव की वकालत करता रहा, और वह बच भी गया। बरी होकर ख़ूनी ने जो पुष्कल महनताना दिया, नियमानुसार उसमें आधा लिंकन का था, परन्तु उसने उसके स्वीकार करने से साफ़ इन्कार कर दिया और स्पष्ट कह दिया, कि जिस मुकदमे की असलियत मुझे ज्ञात हो चुकी है कि अभियुक्त अपराधी है, उसकी फ़ीस मैं कैसे स्वीकार कर सकता हूँ। उसका कहना था कि बहुत-सी बातें क़ानून की रू से ठीक हो सकती हैं, परन्तु नैतिक दृष्टि से देखा जाय तो वे अनुचित और पापमूलक सिद्ध होंगी।

अब्राहम जिन मुकदमों में वकालत करता था, उनमें उसकी

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

विलक्षण प्रतिभा और अद्भुत तर्क-शैली का आश्चर्यजनक प्रभाव दिखाई देता था। एक बार एक निर्दोष व्यक्ति पर उसके विरोधियों ने मिथ्या दोष लगाकर मुकदमा चलवा दिया। दफ़ा सङ्गीन लगाई गई। सब गवाहों ने यही कहा था कि अभियुक्त ने जिस समय अपराध किया उस समय चन्द्रमा की चाँदनी फैली हुई थी, अतः उस चाँदनी में वह अपराध करते देखा गया। गवाहियाँ हो चुकीं थी, केवल वकीलों की बहस बाकी थी। उसने पञ्चाग उठाया, देखा तो जिस रात को जिस समय वह घटना हुई बताई गयी थी, उस रात को घटना-काल से कई घंटे बाद चन्द्रमा का उदय होना लिखा था। न्यायाधीश पञ्चाग को देख कर दङ्ग रह गया, और उसने सारे मामले को झूठा समझ कर अभियुक्त को बरी कर दिया।

उन दिनों संस्थानों के शासक गाँव-गाँव में भ्रमण कर वहाँ के मुकदमे फैसल किया करते थे, जिससे लोगों को केन्द्र में आने का कष्ट न उठाना पड़े और वे परेशानी और आर्थिक अपव्यय से बच जावें। हाकिमों के साथ वकील भी दौरा में जाते। प्रायः सब ही वकील अपनी या भाड़े की घोड़ागाड़ियों में दौरे में जाते थे। परन्तु अब्राहम तो ग़रीब वकील था, इसके पास इतना रुपया कहाँ था, जो घोड़ा-गाड़ी रख सकता। यह तो अपने कागज-पत्रों का बस्ता कमर पर बाँधे पैदल ही हाकिमों के साथ घूमा करता था और वह अपनी परिस्थिति पर बड़ा गर्व-गौरव अनुभव करता था। १८४२ में अब्राहम ने मेरी टाड नामक स्त्री से विवाह कर लिया और पति-पत्नी बड़े प्रेमपूर्वक संसार-साधन में प्रवृत्त हुए।

अब्राहम की सार्वजनिक सेवा ने जनता के हृदय पर अधि-

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

कार कर लिया और उसे सब लोग बड़े आदर-भाव से देखने लगे। अपने प्रान्त की व्यवस्थापिका सभा के सदस्य की हैसियत से तो वह आठ वर्ष से जनता की सेवा कर रहा था, अब जनता की इच्छा हुई कि उसे केन्द्रीय काँग्रेस में निर्वाचित करके भेजा जाय।

इलिनाइस नामक संस्थान (जहाँ अब्राहम वकालत करता था) की जनता की बड़ी इच्छा थी कि वह अब्राहम को अपनी ओर से काँग्रेस में भेजती, परन्तु अब्राहम क्ले नामक एक और सज्जन को वहाँ भेजने के लिए उत्सुक था। वह समझता था कि क्ले के काँग्रेस में जाने से जनता का बड़ा उपकार हो सकेगा। इसके लिए अब्राहम ने पूरी कोशिश की और क्ले के पक्ष-समर्थन में बड़े-बड़े व्याख्यान दिये, परन्तु वह काँग्रेस के लिए निर्वाचित न हो सका। अन्ततः १८४६ ई० में जनता ने अपने मन की की और अब्राहम को ही प्रतिनिधि-मण्डल का सदस्य निर्वाचित कर काँग्रेस में भेजा। काँग्रेस में जाकर लिंकन ने दासत्व-प्रथा के विरुद्ध आवाज़ उठाई और उसका समूलोन्मूलन करने की प्रतिज्ञा की। अमरीका में दासत्व-प्रथा का शताब्दियों से दौर-दौरा था। वहाँ स्त्री, पुरुष और बालक भेड़-बकरियों की भाँति बिका करते थे और ख़रीदने वाला उन पर अपना एक-छत्र अधिकार समझ मनमाने अत्याचार किया करता था। अब्राहम को यह अमानुषिक प्रथा बड़ी बुरी और लज्जाजनक प्रतीत होती। अब तक अब्राहम दासत्व-प्रथा के विरुद्ध मौखिक रोष प्रकट करने के अतिरिक्त और कुछ न कर पाता था, परन्तु काँग्रेस में पहुँचने पर उसे इस राक्षसी-प्रथा का नाश करने के लिए उचित अवसर हाथ लगा, और उसने वहाँ बड़ी ज़ोरदार वक्तृताएँ देनी प्रारम्भ कीं। परन्तु काँग्रेस में

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

कुछ ऐसे कट्टरपन्थी भी थे जो दासत्व-प्रथा को अच्छा समझते थे, और एड़ी से चोटी तक का जोर लगा कर उसका समर्थन करते। इस प्रश्न के उपस्थित होने पर कांग्रेस में सदैव दो दल हो जाते थे और गुलामी के समर्थकों का दल ही अधिक जोरदार दिखाई देता था। अब्राहम ने कांग्रेस के बाहर दासत्व-प्रथा के विरुद्ध व्याख्यान दिए तो उधर उसके विरोधियों ने दास-प्रथा के समर्थन में लेक्चर-बाज़ी शुरू कर दी। जनता में भी दो दल होगये। एक दासत्व-प्रथा का समर्थन करने वाला और दूसरा उसका विरोधी। पहले पक्ष का नेता था डगलस और दूसरे का अब्राहम लिंकन।

दोनों पक्षों के विवाद बहुत दिनों तक चलते रहे। इतने दिनों में कई वार कांग्रेस का चुनाव हुआ और बार-वार लोगों ने अब्राहम को चुन कर भेजा। जनता भली-भांति समझ गयी थी कि अब्राहम का लक्ष्य लोकहित और मानवता के उद्धार पर है, उसका कोई निजी स्वार्थ नहीं। अब्राहम को अपने प्रयत्नों में पर्याप्त सफलता मिली और दासत्व-प्रथा की कठोर शृङ्खलाएँ कुछ-कुछ शिथिल भी हुईं। इससे उसकी ख्याति का ठिकाना न रहा और वह सारे देश के आदर का पात्र बन गया। यहाँ तक कि १८६० ई० में जून की सोलहवीं तारीख़ को वह अमरीका के समस्त संस्थानों—राज्यों—का अध्यक्ष चुना गया।

अब्राहम के अध्यक्ष चुने जाने की सूचना से सर्वत्र हर्ष छा गया, परन्तु स्वयम् अब्राहम को कोई प्रसन्नता न हुई; क्योंकि उस समय उसके प्रतिस्पर्द्धियों की संख्या बहुत बड़ी थी और अध्यक्ष का काम करना कोई खेल न था। फिर भी अब्राहम ने कर्तव्यानुरोध से अपने निवास-स्थान स्प्रिङ्गफील्ड से वाशिंगटन

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

के लिये चल पड़ा। मार्ग में विरोधियों की ओर से अनेक विघ्न डाले गये, परन्तु लिंकन सारे सङ्कटों को चीरता हुआ वाशिंगटन पहुँचा। वहां उसके दोनों पक्षों को सम्बोधन कर बड़ा महत्वपूर्ण अध्यक्षीय भाषण दिया। विरोधियों पर भाषण का अच्छा प्रभाव पड़ा, परन्तु वे दासत्व प्रथा के विरुद्ध अपना हठ छोड़ने को तैयार न थे।

दक्षिणी अमरीका में क्रीत दासों की बहुत बड़ी संख्या थी और वहां के लोग उनसे लाभ भी खूब उठाते थे, अतः स्वाभाविक रीति से वे दासत्व-प्रथा के प्रबल समर्थक थे। उधर उत्तरी भाग के निवासी इस अमानुषिक प्रथा का अवरोध करने के लिए पूर्ण रूप से सन्नद्ध थे। लिंकन उनका नेता था। दक्षिणी संस्थानों ने बहुत कोशिश की कि दासत्व-प्रथा का विरोधी अब्राहम अमरीका का अध्यक्ष न बनने पावे, परन्तु उनके लाख सिर पटकने पर भी वह अध्यक्ष चुन लिया गया। अब विरोधियों ने 'कोनफिडेर' नाम से अपना एक अलग गुट्ट बनाया और उस गुट्ट का अध्यक्ष 'जेफरसन डेविस' नामक व्यक्ति चुन लिया। फिर क्या था, इस गुट्ट ने अपनी बहुत बड़ी सेना संगठित की और उत्तरी रियासतों पर आक्रमण करने का मनसूबा बांध कर लूट-मार प्रारम्भ कर दी।

अब्राहम लिंकन ने इस गृहयुद्ध को रोकने के लिये बहुत प्रयत्न किया, परन्तु उसे सफलता प्राप्त न हुई। जब शांति के सारे साधन और उपाय व्यर्थ सिद्ध हुए और मामले ने गंभीरता पकड़ी तो अब्राहम लिंकन भी अमरीका की एकता अक्षुण्ण रखने के विचार से आगे बढ़ा और उसने सैन्य-संग्रह का कार्य प्रारम्भ कर दिया। उसकी एक घोषणा में, ४८ घण्टे के अन्दर ७५००० सैनिक भर्ती होगये।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

दक्षिणी और उत्तरी अमरीका में घोर घमसान युद्ध हुआ। कभी कोई दल जीतता और कभी कोई। कई बार तो उत्तर वालों की स्थिति बड़ी ही संकटापन्न होगई, परन्तु उन्होंने साहस कभी न छोड़ा। अब्राहम लिंकन ने दूसरी बार फिर दक्षिण पर आक्रमण करने का निश्चय किया और पचास सहस्र सैनिक माँगे। परन्तु अब की बार साढ़े छह लाख के लगभग सेना एकत्र होगई। बड़े ज़ोर की लड़ाई हुई।

प्रारम्भ में अब्राहम का यह विचार था कि अमरीका में जहाँ-जहाँ दासत्व-प्रथा प्रचलित है, वहीं रहे तो रहे, आगे उस का प्रचार न बढ़ने पावे। परन्तु अब उसकी विचार-धारा बदल गई और उसने घोषणा कर दी कि "सारे देश में कोई व्यक्ति अपने को क्रीत दास न समझे, सब लोग समान रूप से स्वतन्त्र हैं। जो कोई किसी की स्वतन्त्रता में बाधक सिद्ध होगा वह अपराधी समझ कर दण्डित किया जायगा।" ज्योंही लिंकन की यह घोषणा चालीस लाख दासों के कानों तक पहुँची, त्योंही वे गुलामी की बेड़ियाँ तोड़ कर बाहर निकल आये और विजय की दुन्दुभि बजाते हुए अब्राहम के साथी बन गये। इससे युद्ध का पासा पलट गया। जो दक्षिण सफलता पर सफलता प्राप्त कर विजयोन्मत्त हो रहा था। उसकी पूर्ण पराजय हुई और विद्रोही दल सदा-सर्वदा के लिये नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया।

अब्राहम को अपनी जीत से सन्तुष्ट होना स्वाभाविक था उसके हर्ष का ठिकाना न रहा। दशों दिशाएँ उसके वीरोचित सुयश-सौरभ से सुगन्धित हो उठीं। परन्तु लिंकन ने इतना महान् पद पाकर और ऐसी विजयश्री उपलब्ध कर घमण्ड या मद के चिन्ह तक दिखाई न पड़ते थे। वह उतना ही सात्विक

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

सरल, साधु और निरभिमान था, जितना कि हो सकता था। अपनी भूल को मुक्तकण्ठ से स्वीकार कर लेना उसकी विशेषता थी। कई बार ऐसा हुआ कि लिंकन ने साधारण अधिकारियों के आगे अपनी भूल स्वीकार की और क्षमा माँगी। इतने बड़े व्यक्ति के लिए ऐसा करना कोई छोटी बात न थी। परन्तु बड़ों का बड़प्पन ऐसी ही बातों से रहता है।

लिंकन जहाँ इतना बड़ा वीर योद्धा था, जहाँ उसमें अपने प्रबल पराक्रम से भयङ्कर से भयङ्कर शत्रु को पराजित करने की अद्भुत क्षमता थी, वहाँ वह सहृदय और दयालु भी बड़ा था। उसने अपने दयालु स्वभाव के कारण कितने ही लोगों को प्राण-दण्ड से मुक्त किया। क्योंकि उसकी सम्मति में साधारण से अपराधों का दण्ड फांसी या मौत नहीं होना चाहिए था। वह झूठी प्रभुता का पक्षपाती न था। साथ ही कभी सिद्धान्तों में समझौता न करता और न न्याय-व्यवस्था में शिथिलता आने देता था। लिंकन की सारी जीवन-कथा न्याय और दयालुतायुक्त घटनाओं से भरी पड़ी है। अनेक अबलाएँ अपनी कष्ट-कहानी सुनाने लिंकन के पास गयीं और उससे उचित आश्रय एवम् आश्वासन पाकर घर लौटीं। जहां तक बनता लिंकन किसी को निराश या दुखी न होने देता था। परन्तु अन्याय के आगे झुकना उसके लिए असम्भव था। अब्राहम बालकों से बड़ा प्रेम रखता था। वह अपने अवकाश के समय बालकों से ही मनोरंजन करता और उन्हें परमात्मा की विशुद्ध प्रतीक तथा राष्ट्र के भावी जीवनाधार समझता था।

लिंकन के सम्बन्ध में किसी ने बिलकुल ठीक लिखा है कि वह धैर्य्य में पर्वत और बल में सिंह के समान था, परन्तु

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

दयालुता में वह एक आर्द्र हृदय स्त्री के समान था। इसीलिए दीन-दुखियों से मिलने-जुलने और उनके अभाव-अभियोग सुनने में उसे बड़ा आनन्द आता था। वह इतना बड़ा आदमी होकर भी साधारण से साधारण व्यक्ति के साथ बात करने में अपना गौरव समझता था। उसका कहना था कि आज प्रभु ने मुझे राष्ट्र-सञ्चालन का इतना महान् कार्य्य सोंपा है, परन्तु एक दिन फिर मुझे साधारण नागरिक रह कर ही जीवन-यापन करना पड़ेगा। अतएव मुझे अपनी पूर्व स्थिति और आगे आने वाली अवस्था का क्षण भर के लिए भी विस्मरण न करना चाहिए।

अब्राहम लिंकन के प्रशंसनीय उद्योग द्वारा दास-प्रथा का अन्त हो जाने कारण प्रायः सब विरोधियों को पराजय का मुख देखना पड़ा। दास प्रथा से मुक्ति मिलने के कारण दासों की प्रसन्नता का ठिकाना न था। देश भर में विजय उत्सव मनाये जा रहे थे। हर्ष का समुद्र उमड़ रहा था। लिंकन भी आमंत्रित होने पर सारे विजयोत्सवों में सम्मिलित होता था। उसकी दृष्टि में गोरे काले का भेद-भाव बिलकुल न था। वह सबको समान स्नेह की दृष्टि से देखता था। इसी बीच में राष्ट्रपतित्व की अवधि समाप्त होने पर फिर राष्ट्रपति का चुनाव हुआ और दूसरी बार भी लिंकन ही बहुत बड़े बहुमत से राष्ट्रपति चुना गया। इससे सारे देश को और भी अधिक प्रसन्नता हुई। खूब उत्सव मनाए गए। परन्तु कुछ लोग ऐसे भी थे, जिन्हें लिंकन एक आँख न भाता था। ये लोग इस घात में रहते थे कि किसी प्रकार उसका बध किया जाय। कई बार बध के लिए षड्यन्त्र भी रचा गया किन्तु सफलता न मिली। अन्त में १६ अप्रैल १८६५ ई० को एक

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

दिन जब लिंकन एक नाट्यशाला में नाटक देख रहा था, तो अचानक बन्दूक का धमाका हुआ। सारे दर्शकों में सन्नाटा छा गया। देखा तो लिंकन ज़मीन पर बेहोश पड़ा है। हत्यारे का वार कारी हुआ और उसकी गोली काम कर गयी। लिंकन बेहोशी की हालत में तुरन्त दूसरी जगह ले जाया गया। अच्छे से अच्छा उपचार हुआ, बड़े से बड़े चिकित्सकों ने ओषधि-प्रयोग किया। परन्तु कोई भी उपाय सफल न हुआ। अन्ततः लिंकन अपनी अजरा-अमरा कीर्त्ति छोड़ कर सदा-सर्वदा के लिए संसार से विदा हो गया।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

लेनिन

रूस में ज़ारशाही का बोल बाला था। ज़ार की इच्छा मात्र से असंख्य जनता का भला बुरा हो सकता था। वहाँ की अगणित प्रजा का भाग्यनिर्णय ज़ार की एकतंत्रता या स्वेच्छाचारिता पर अवलम्बित था। मानसिक दासता के विरुद्ध किसी को शब्द भी निकालने का साहस न होता था। षडयंत्रों और स्वार्थान्धतापूर्ण प्रपंचों से जनता में त्राहि-त्राहि मची हुई थी। किसी का जीवन ख़तरे से ख़ाली न था। परिवार बुरी तरह तंग हो रहे थे; अत्याचार की आँधी और अन्याय की भयङ्करता से सब ही का नाकों दम था। परिस्थिति पुकार-पुकार कर ऐसी एक महान् आत्मा का आह्वान कर रही थी जो रूस की इस अत्याचार पीड़ित प्रजा को घोर संकीर्णता और मानसिक दासता के जटिल जाल से निकाल कर उदारता की ओर प्रेरित करता। ऐसे समय में महामति लेनिन का प्रादुर्भाव बड़ा ही सामयिक और रूस की प्रजा के लिए अत्यन्त कल्याणकारी हुआ।

लेनिन का जन्म १८७० ई० में रूस के सिम्ब्रस्क नामक नगर में हुआ था। उसका असली नाम 'व्लादीमीर इलिच उलियानोव' था लेकिन कुछ कारणों से वह अपने को लेनिन कहने लगा और इसी नाम से संसार में प्रसिद्ध हुआ। लेनिन के माता-पिता

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

साधारण गृहस्थ थे। पिता, 'इलिया निकोल-पेविच उलिया नोव' अस्तराखान नगर के रहने वाले थे। सिम्वर्स्क में वे स्कूलों के इन्स्पेक्टर के ओहदे पर शिक्षा-विभाग में काम कर रहे थे। सरकारी कर्मचारी होने के कारण इन्हें भी ज़ारशाही का एक पुर्जा बन कर उसी का सब प्रकार समर्थन करना पड़ता था। इनके पास अन्य जो सरकारी अधिकारी अफ़सर आते वे भी ज़ार के ही गीत गाते। जनता के कष्टों का उन्हें ध्यान भी न होता था। वे प्रजाजनों को अत्यन्त उपेक्षा-दृष्टि से देखते थे। ज़ार की स्वेच्छाचारिता के समर्थन पूर्वक अपनी नौकरी को सुरक्षित बनाये रखने पर ही इनका मुख्य लक्ष्य रहता था। ज़ार भी अपने इन अफ़सरों को जनता के हितों के विरुद्ध बनाये रखने की सदैव चेष्टा करता। लेनिन की माता मेरिया एलेक्ज़ैन्ड्रो वाना' को अपने पति की चाटुकारिता पूर्ण नीति पसन्द न थी। वह उन्हें हर वक्त खुशामदी अफ़सरों के साथ बैठे रहना न देख सकती थी। वह चाहती थी कि उसका पति प्रजा के अन्य प्रतिष्ठित लोगों से भी मिलता जुलता रहे और अपने परिचितों की संख्या राज्याधिकारियों तक ही सीमित न रक्खे। लेनिन के पिता को यह बात पसन्द न थी उसे भय था कि जनता के लोगों से मिलने-जुलने के कारण कहीं वह क्रान्तिकारियों में न समझ लिया जाय और इस प्रकार व्यर्थ ही उसे ज़ार का कोप-भाजन बनना पड़े। लेनिन की माता के इस विषय के सारे उद्योग व्यर्थ सिद्ध हुए और उसके पति ने नौकरी छूट जाने के भय से कभी प्रजाजनों से परिचय प्राप्त न किया।

लेनिन की प्रारम्भिक शिक्षा सिम्वर्स्क के पवलिक स्कूल में हुई। कुशाग्र बुद्धि होने के कारण वह अपना पाठ बड़ी शीघ्रता से याद कर लेता था और श्रेणी के सब विद्यार्थियों में प्रथम रहता था। उसकी प्रखर प्रतिभा देखकर अध्यापक लोग बहुत प्रभावित हुए और वे सब उसके उज्ज्वल भविष्य की आशा करने लगे। जब-जब

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

परीक्षाएँ होतीं लेनिन उनमें बड़े अच्छे नम्बरों से उत्तीर्ण होता जिससे सर्वत्र उसकी सफलता की धूम मच जाती। लेनिन स्वाध्यायशील बड़ा था। प्रातःकाल चाय पीकर एकान्त में पढ़ने बैठता और सायंकाल तक बराबर पढ़ता रहता। शाम को थोड़ी दूर टहलने के लिए ज़रूर जाता। वहाँ से आकर भोजनोपरान्त फिर पढ़ने में लग जाता। साथियों से भी पढ़ने-लिखने के सिवा और किसी प्रकार की बात-चीत न करता। लेनिन अपने विद्यार्थी काल में किताबों का कीड़ा बना हुआ था। बचपन में ही नहीं बड़े होने पर भी उसने स्वाध्यायशीलता से कभी मुँह नहीं मोड़ा। अन्त तक वह बड़े परिश्रम पूर्वक ग्रन्थों का अध्ययन करता रहा। उसका ज्ञान बड़ा ही व्यापक था, उसकी परिश्रमशीलता का ठिकाना न था। लेनिन की बहन ने उसकी स्वाध्यायशीलता की बड़ी प्रशंसा की है, अस्तु।

सिम्बर्स्क के पबलिक स्कूल की पढ़ाई समाप्त कर १८८८ ई० में लेनिन कज़ान विश्वविद्यालय में भर्ती हुआ। उन दिनों विश्वविद्यालयों में ज़ारशाही के भक्त धनी मानियों के लड़के ही प्रविष्ट किए जाते थे। साधारण जनता में से यदि कोई बालक विश्वविद्यालय में दाख़िल हो भी जाता था, तो उसकी बड़ी देख भाल रक्खी जाती थी कि कहीं वह क्रान्तिकारी विचारों का तो नहीं है। उन दिनों ज़ार के विरुद्ध क्रान्तियों और षड्यन्त्रों का ज़ोर था। नवयुवकों के हृदयों में ज़ारशाही को नष्ट-भ्रष्ट करने की भावना उग्र हो चली थी। वे अपने इस उद्देश्य की सफलता के लिए नाना प्रकार के उपाय सोचा करते थे। लेनिन पर भी क्रान्तिकारी भावों का बड़ा असर था। अवसर मिलने पर वह क्रान्तिकारियों की मण्डली में बैठता और उनके साथ सहयोग करता। इसी समय उसने साम्यवाद प्रवर्त्तक, कार्ल मार्क्स की कई प्रसिद्ध पुस्तकें पढ़ीं जिनसे पूँजीवाद के विरुद्ध उसकी धारणा और भी बलवती हो गई। विश्व-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

विद्यालय में क्रान्तिकारियों का एक गुप्त दल स्थापित हो गया और इस दल के प्रकाशन विभाग का कार्य लेनिन को सौंपा गया। लेनिन ज़ारशाही के विरुद्ध बड़ी योग्यता से पुस्तकें और विज्ञप्तियाँ प्रकाशित करने लगा। विश्वविद्यालय में लेनिन पर बड़ी कड़ी दृष्टि रक्खी जाती थी। परन्तु फिर भी वह किसी न किसी प्रकार अपनी उद्देश्य-पूर्ति के लिए समय निकाल ही लेता।

ऊपर कहा जा चुका है कि नवयुवकों के हृदयों में ज़ार की निरंकुशता के विरुद्ध प्रचण्ड अग्नि भड़कने लगी थी। स्थान-स्थान पर गुप्त सभायें स्थापित हो रही थीं, षड्यन्त्र रचे जा रहे थे। सेण्ट पीटर्सबर्ग और मास्को विश्वविद्यालय के छात्रों ने हड़ताल करदी थी। कज़ान विश्वविद्यालय जिसमें लेनिन पढ़ता था, इस दिशा में भला कब पीछे रहने वाला था। उसमें भी बड़े ज़ोर से हड़ताल हुई। क्रान्तिकारी नवयुवक दल क्षण भर के लिए भी ज़ार की निरंकुशता को सहन करने के लिए तैयार न था। वह चाहता था कि रूस का शासन-भार लोकनिर्वाचित प्रतिनिधियों को सौंप दिया जाय जिससे वहाँ निरंकुशतापूर्ण ज़ारशाही का नाम भी सुनाई न पड़े। क्रान्तिकारी दलों ने इस प्रकार की शासन व्यवस्था के लिए ज़ार से प्रार्थना करने का प्रस्ताव स्वीकृत किया परन्तु लेनिन इस प्रकार की अनुनय विनय के विरुद्ध था। उसे विश्वास न था कि पाषाण-हृदय ज़ारशाही पर इस प्रकार की प्रार्थनाओं का कुछ प्रभाव पड़ेगा। लेनिन ने कज़ान विश्वविद्यालय के क्रान्तिकारी विद्यार्थियों की एक सभा में सिंह गर्जना करते हुए कहा कि जो अत्याचारी लोग ज़ारशाही के सुदृढ़ दुर्ग को उत्तरोत्तर मज़बूत बना रहे हैं, उनके आगे न्याय-भिक्षा के लिये पल्ला पसारने पर कुछ भी हाथ न लगेगा; सारी शक्तियाँ व्यर्थ जायँगी। आवश्यकता है कि सैनिक-समूह और कृषकों को साथ लेकर सशस्त्र क्रान्ति की जाय। शक्ति और संगठन के बिना सफलता

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

की आशा दुराशा मात्र है। जो ज़ारशाही निरंकुशता का नंगा रूप दिखाने में तनक भी सङ्कोच नहीं करती वह हमारी प्रार्थनाएँ कैसे सुन सकेगी, यह बात मेरी समझ में नहीं आती। देश की स्वतंत्रता के लिए बलिदानों की आवश्यकता है, प्राणों की बाज़ी लगा कर कर्त्तव्य पालन में जुट जाओ, विजय-श्री तुम्हारे साथ होगी।

अमानुषिक अत्याचारों का अड्डा बनी हुई रूस सरकार भला इस प्रकार के क्रान्तिकारी भाषणों को कब सहन कर सकती थी। गुप्तचरों द्वारा लेनिन के उत्तेजक उपदेशों की सूचना पाकर दूसरी पुलिस कज़ान विश्वविद्यालय में आई और उसने लेनिन को पकड़ कर कोकुश्किनो प्रान्त में बहिष्कृत कर दिया। बहिष्कृत होकर भी लेनिन ने क़ानूनी किताबें पढ़ना न छोड़ा और वह बराबर परीक्षा की तैयारी करता रहा, परन्तु विश्वविद्यालय ने उसे परीक्षा में बैठने की अनुमति नहीं दी। तीन वर्ष के निर्वासन के पश्चात् १८९१ ई० में लेनिन क़ानून की परीक्षा में बैठा और उत्तीर्ण हो गया। लेनिन जब कोकुश्किनो में निर्वासन काल बिता रहा था तब वहाँ बड़ा भारी अकाल पड़ा। अकाल पीड़ितों की सहायता पर विचार करने के लिए एक महती सभा हुई जिसमें लेनिन ने भी भाषण दिया लेनिन का भाषण सभा के उद्देश्यों से बिल्कुल भिन्न था, उसने बड़े ज़ोरों से कहा कि अकाल-पीड़ितों को सहायता देना ज़ारशाही के कठोर कुशासन की जड़ पाताल में पहुँचाना है। ज़ार के शासन में प्रजा को जितना ही अधिक कष्ट मिलेगा उतनी ही वह असन्तुष्ट होकर उस निरंकुश शासन को जड़ खोदने में प्रयत्नशील होगी। जो प्रजा ज़ार की स्वेच्छाचारिता के कारण इतनी त्रस्त और पीड़ित है उसे अस्थिर साधनों द्वारा सुख पहुँचाने की चेष्टा करना मूर्खता या अदूरदर्शिता है। रूस की प्रजा को वास्तविक सुख उसी समय प्राप्त हो सकता है जब वह अत्यन्त असन्तुष्ट और दुखित होकर क्रांति करने के लिए कटिबद्ध हो जाय। लेनिन के

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

इस भाषण का जनता पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा और वह उसे अपना सच्चा शुभचिन्तक समझने लगी।

निर्वासन काल समाप्त कर लेनिन ने समारा में वकालत शुरू करदी थी, परन्तु उसके हृदय में तो क्रान्ति के भव्य भाव जागरूक थे; देश भक्ति की अग्नि प्रज्ज्वलित हो रही थी। जहाँ अन्य वकील धन कमाने की धुन में निमग्न थे, वहाँ लेनिन को त्रस्त और पीड़ित प्रजा के संकट-मोचन की चिन्ता सता रही थी। वकील बन कर उसने न्यायालयों में देखा कि न्यायाधीश लोग क़ानून का किस प्रकार दुरुपयोग करते हैं। क़ानून क़ानून के रूप में इस्तैमाल नहीं किया जाता बल्कि उसका उपयोग अभियुक्त की परिस्थिति और अवस्था देख कर होता है। एक ही क़ानून किसी अभियुक्त पर अभिशाप की अग्नि होकर गिरता है और किसी के ऊपर करुणा-कुसुम बन कर बरसता है; रियायत, हिमायत और सिफ़ारिशों का अदालतों में बोलबाला है। जिसने न्यायाधीश को प्रसन्न कर लिया उसने क़ानून भी अपने अनुकूल बना लिया। न्यायालयों का न कोई आदर्श था और न उद्देश्य। अधिकारियों की इच्छा ही क़ानून का रूप धारण कर चुकी थी। लेनिन रूस के न्यायालयों की ऐसी दुर्दशा देखकर बड़ा निराश हुआ। उसे न्यायालयों से इतनी घृणा हो गई कि उसने वकालत करना ही छोड़ दिया।

वकालत-व्यवसाय छोड़ कर लेनिन सुख की नींद नहीं सोया और न उसने किसी दूसरे व्यवसाय द्वारा धनी बनने की बात सोची। उसके हृदय में तो पीड़ित प्रजा के कष्टों की अग्नि धधक रही थी; मूक जनता के हितों की भावना का तूफ़ान उठ रहा था। लोगों के दुख किस प्रकार दूर हों, उनको निरंकुश शासन-सत्ता के पैशाचिक पंजे से किस तरह मुक्ति मिले ये विचार लेनिन के मस्तिष्क से क्षण भर के लिए भी दूर न होते थे। वकालत को अन्तिम नमस्कार कर वह समारा से सेण्ट पीटर्सबर्ग चला आया और

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

वहाँ क्रान्ति के साधनों पर विचार करने लगा। लेनिन का मुख्य लक्ष्य ज़ारशाही की निरंकुशता का नाश करने पर था। इसी भावना का वह सर्व-साधारण में प्रचार करता और जनता को उसके विरुद्ध बग़ावत करने के लिए उकसाता।

सेण्ट पीटर्स बर्ग में आकर तो लेनिन के पास आन्दोलन करने के सिवा दूसरा काम ही न था। वह वहाँ रात-दिन आचार्य कार्ल-मार्क्स के साम्यवाद सम्बन्धी सिद्धान्तों का प्रचार करता और उनके भाव तथा उद्देश्य पीड़ित जनता को बड़ी अच्छी तरह समझाता। लेनिन के पूँजीवाद विरोधी व्याख्यानों को भूखों मरती मज़दूर जनता बड़े प्रेम से सुनती और उन बातों में अपना हित देखती। लेनिन नकली नेताओं की भाँति जन-समूह के आगे व्याख्यान झाड़ कर घर न जा बैठता प्रत्युत सबके पास जा-जाकर व्यक्तिगत रूप से उनके दुख-दर्द सुनता और उन्हें भले प्रकार समझाता-बुझाता। लेनिन के ऐसे व्यवहार के कारण मज़दूर लोग उसको अपना परम हितैषी समझने लगे और उसकी बातों में अपना उद्धार देखने लगे। लेनिन ने मज़दूरों को बतलाया कि "ज़ारशाही के निरंकुश शासन में तुम्हारे रक्त मांस का किस क्रूरता के साथ दुरुपयोग किया जा रहा है। इतने अधिक घण्टे काम करा कर मज़दूरी रूप में जो कुछ तुम्हें मिलता है वह न कुछ के बराबर है। क्या तुम्हारा जन्म इस ग़ुलामी के लिए ही हुआ है, क्या तुम इस तरह के भयङ्कर कष्टों को भोगने के लिए ही पैदा हुए हो? मैं देखता हूँ कि तुम्हारे परिश्रम से पूँजीपति लोग समृद्धिशाली होकर दिनों दिन मोटे हो रहे हैं, परन्तु तुम्हारे लिए पेट भर अन्न भी नहीं है। जिस शासन में ख़ून-पसीना एक करने वाले मज़दूरों की ऐसी दुर्दशा हो उसका शीघ्र से शीघ्र अन्त कर देना चाहिए। क्या तुम नहीं देखते कि ज़ारशाही में रिश्वतों का बाज़ार कैसा गर्म है? ऐसा कौन-सा अन्याय अत्याचार है जो रिश्वत के द्वारा नहीं कराया जा

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

सकता ? जहाँ न्यायाधीश कहे जाने वाले लोग रिश्वत-रमणी के प्रेम पाश में फँसाये जा सकते हैं वहाँ जो कुकृत्य न हो सके वह थोड़ा है।"

लेनिन के ऐसे विद्रोही विचारों और व्याख्यानों का जनता पर खूब प्रभाव पड़ा। उनसे पीड़ित प्रजाजनों के हृदय में ज़ालिम ज़ारशाही के प्रति असन्तोष और विरोध की भावना पैदा होने लगी। लेनिन ने अपना कार्य व्याख्यानों और कथोपकथनों तक ही सीमित न रक्खा बल्कि उसने छिपे तौर से छपी हुई विज्ञप्तियाँ प्रकाशित करने की व्यवस्था भी की। ये विज्ञप्तियाँ गुप्त रूप से लोगों के पास पहुँचाई जाती थीं और जो उन्हें पढ़ता उस पर उनका बड़ा असर होता था। इस आन्दोलन का परिणाम यह हुआ कि लेनिन की अध्यक्षता में मज़दूर सुधारक संघ की स्थापना हुई और सब लोग लेनिन के इशारे पर काम करने लगे। कभी-कभी असन्तुष्ट मज़दूरों की हड़ताल भी होने लगी, जिन्हें देख कर ज़ारशाही के पुर्ज़े सशंक हुए और उस आन्दोलन में राज-विद्रोह का प्रतिविम्ब देखने लगे।

लेनिन की इस प्रकार गुप्त प्रगतियाँ देखकर सेंट पीटर्सबर्ग की पुलिस उसके पीछे पड़ गई और उसे गिरफ़्तार करने की चेष्टा करने लगी। लेनिन ने भी पुलिस प्रपंच से बचने का पूरा प्रयत्न कर लिया था। वह सेण्ट पीटर्सबर्ग की गली-गली से पूर्णतया परिचित था, अतएव पुलिस की परछाईं दीखते ही वह तुरन्त अपने बचाव की व्यवस्था कर लेता। सेण्ट पीटर्सबर्ग के अधिकारी मज़दूरों पर लेनिन का इतना अधिक प्रभाव देखकर आश्चर्यचकित थे। उनके लिए यह और भी अचम्भे की बात थी कि पुलिस के सर तोड़ प्रयत्न करने पर भी वह उसके हाथ न आता था। इतने दिनों में लेनिन ने मज़दूरों में से कुछ ऐसे कार्यकर्त्ता तैयार कर लिए जो उसकी अनुपस्थिति में भी बराबर काम करते रहें। जब उसे इनकी कार्य-क्षमता पर विश्वास हो गया तो वह

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

सेण्ट पीटर्सबर्ग छोड़ जर्मनी की ओर चल पड़ा। वहाँ बर्लिन पहुँचकर वह साम्यवादी नेताओं से मिला और उनकी गति विधि को निरखने-परखने लगा परन्तु बर्लिन के नेताओं में वचन-वीरता और लेख-शूरता के अतिरिक्त क्रियात्मकता का कुछ भी अंश दिखाई न दिया। केवल काग़ज़ी घोड़े दौड़ाने या कोरी बातें बनाने में लेनिन का बिल्कुल विश्वास न था। जर्मनी से लेनिन फ़्रांस गया, परन्तु वहाँ भी उसे कुछ तथ्य दिखाई न दिया। वहाँ भी वचन-वीरता का ही बोल-बाला था। फ़्रांस से जेनेवा जाकर लेनिन रूस के निर्वासित व्यक्तियों से मिला और उसने उनके दुख-सुख की कहानी सुनी। इस यात्रा से लेनिन को विश्वास हो गया कि रूसी जनता के उद्धार का उपाय स्वयं रूसियों के ही हाथों में है। बाहर की कोई भी शक्ति उसमें सहायक नहीं हो सकती। जिस पर बीतती है उसीको उससे बचने का उपाय सोचना पड़ता है। फ़्रांस और जर्मनी के साम्यवादियों का खोखलापन देखकर उधर से लेनिन की आस्था नष्ट होगई। जिन लोगों के सम्बन्ध में उसने बहुत कुछ सुन रक्खा था वे वचनवीर से बढ़कर सिद्ध न हुए। सर्वत्र घूम-फिर कर लेनिन फिर सेण्ट पीटर्सबर्ग पहुँचा और उसने वहाँ अपना आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। इस समय उसने अपने साथियों से कहा, 'विदेशियों से हमें अपने उद्धार की कुछ भी आशा न रखकर जो कुछ करना है स्वयं ही करना चाहिए। मैंने फ़्रांस और जर्मनी के साम्यवादी नेताओं को अच्छी तरह निरखा-परखा, परन्तु वे क्रियात्मकता से शून्य सिद्ध हुए। केवल सिद्धान्त-वाद से काम नहीं चल सकता। तब तक हम लोग क्रियाशीलता का आश्रय न लेंगे, तब तक हमारा उद्धार असम्भव है। इसके लिए हमें बड़े से बड़ा स्वार्थ त्याग करने के लिए तैयार रहना चाहिए। स्वतन्त्रता-सत्र को सफल बनाने के लिए हमें अपने जीवन का भी मोह त्यागना पड़ेगा, हँसते-हँसते शरीर बलि वेदी पर

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

चढ़ाने होंगे, तब कहीं जाकर सफलता-सूर्य की कमनीय किरणों के दर्शन हो सकेंगे।

सेएट पीटर्सबर्ग में लेनिन के फिर आजाने की खबर पाकर वहाँ की पुलिस के पेट में पानी हो गया और वह उसे पकड़ने के लिए दौड़-धूप करने लगी। परन्तु लेनिन भला कब उसके हाथ आने वाला था। उसके पास बचने की भी ऐसी-ऐसी युक्तियाँ थीं कि पुलिस देखती ही रह जाती। लाख प्रयत्न करने पर भी सेएट पीटर्सबर्ग की प्रवीण पुलिस लेनिन को गिरफ्तार न कर सकी।

लेनिन अब तक अविवाहित था। उसको अपने ही जैसे विचारों वाली एक चिरसङ्गिनी की आवश्यकता थी जो "ना देजदा कौंसटेएटी नोवा क्रुप्सकेया" नामक महिला के रूप में उसे मिल गई। क्रुप्सकेया भी सेएट पीटर्सबर्ग के मज़दूर आदोलन में लेनिन के ही समान सर्वात्मना संलग्न रहने वाली थी। लेनिन इसकी योग्यता और कार्य कुशलता से बहुत प्रसन्न था। वह अच्छी तरह समझता था कि ऐसी महिला के साथ विवाह कर लेने पर उसे उसके आन्दोलन में बहुत सहायता मिलेगी। विदेश यात्रा से लौटकर लेनिन ने क्रुप्सकेया के सामने विवाह का प्रस्ताव रक्खा, जिसे उसने सहर्ष स्वीकार कर लिया। क्रुप्सकेया को पत्नीरूप में पाकर लेनिन के प्रसन्नता-पारावार का वारपार न रहा और इसके कारण उसका प्रचार कार्य भी बहुत कुछ सुगम हो गया। क्रुप्स-केया ने लेनिन का भयङ्कर संकट और विकट परिस्थितियों में पूरा-पूरा साथ दिया। अपना जीवन ख़तरे में डालकर भी उसने बराबर आन्दोलन में भाग लिया। लेनिन को अपने जीवन में वर्षों निर्वासित तथा अज्ञातरूप से रहना पड़ा था। यदि इन दिनों का हाल क्रुप्सकेया अपने संस्मरणों में न लिखती तो लेनिन के जीवन का बहुत-सा अंश अंधकार में ही रहता; उसका निर्वासन-कालीन कार्यकलाप किसी को कुछ भी मालूम न होता ।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

सेण्ट पीटर्सबर्ग की पुलिस वर्षों जिस प्रयत्न में रही अन्ततः उसमें उसे सफलता मिल ही गई। लेनिन गिरफ़्तार कर बन्दीगृह में बन्द कर दिया गया। कारागार में रह कर भी उसने अपना आन्दोलन जारी रक्खा। वह सङ्केत-लिपि द्वारा अपने जेल से बाहर वाले साथियों को सन्देश देता और उनके समाचार मँगाता। लेनिन क़ैदियों में भी साम्यवाद का प्रचार करता और उन्हें निरंकुश ज़ारशाही की जड़ उखाड़ फेंकने के लिए भड़काता। कभी-कभी वह स्याही के बजाय दूध से गुप्त चिट्ठियाँ लिखता, जिन्हें पढ़ने वाले ज़रा-सी गर्मी दिखाकर पढ़ लेते थे। इन चिट्ठियों का रहस्य बहुत दिनों तक जेल के अधिकारियों को मालूम न हुआ। लेनिन कारागार में बन्द रह कर भी येनकेन प्रकरेण मज़दूरों को उनके उद्धार की विधि बताता रहा और उसने एक क्षण के लिए भी उन्हें विस्मरण नहीं किया। जिस आन्दोलन के कारण लेनिन कारागार की कोठरी में बन्द कर दिया गया था, वह वहाँ जाकर उसे भूल भी कैसे सकता था। कुछ काल तक लेनिन सेण्ट पीटर्स-बर्ग की जेल में रक्खा गया, परन्तु पीछे सरकार ने उसे साइबेरिया के शूशेंस्क नामक नगर में निर्वासित कर दिया। साइबेरिया में रूस के और भी बहुत से निर्वासित व्यक्ति मौजूद थे। लेनिन को उन सब से अलग रक्खा गया। शूशेंस्क पहुँचने पर क्रप्सकेया ने भी अपने पति के पास पहुँचने की इच्छा प्रकट की और सरकार की अनुमति से वह वहाँ भेज दी गई। क्रप्सकेया के साथ उसकी माँ भी लेनिन के पास पहुँची।

शूशेंस्क में निर्वासित लेनिन के रहने के लिए एक छोटी सी कोठरी मिली हुई थी, उसीमें उसे गुज़र करनी पड़ती। क्रप्सकेया और उसकी माँ को भी रहने के लिए अलग-अलग कोठरियाँ मिल गईं। लेनिन को जीवन निर्वाह के लिए सरकार की ओर से कुछ निश्चित रक़म मिलती थी, जिससे उसका काम चल जाता था।

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

क्रास्नोयार्स्क के पहुँचने पर वह अपना समय बड़ी अच्छी तरह बिताने लगा। उसने उसकी सहायता से पुस्तकों का अनुवाद करना प्रारम्भ किया। अनुवाद से अवकाश मिलने पर वह शूशंस्क के किसानों की अवस्था जानने का प्रयत्न करता और उनके दुःख सुख में शरीक़ होता। एक बार लेनिन ने वहाँ के किसी किसान को ऐसी क़ानूनी सलाह दी जिससे वह अपना मुक़द्दमा जीत गया। इस घटना से ग्राम की जनता पर लेनिन का बड़ा प्रभाव पड़ा और वह उसे अपना सच्चा हितैषी समझने लगी। जब-जब ग्राम वालों पर कोई मुसीबत आती, तब-तब वे लेनिन की सलाह लेते और उसके कथनानुसार ही कार्य करते। एक प्रकार से लेनिन शूशेंस्क ग्राम निवासियों का वकील बना हुआ था, और उनके ऊपर वह अपना सिक्का जमा चुका था। पुस्तकों का अनुवाद करने और ग्रामीण जनता को सलाह मशवरा देने के अतिरिक्त लेनिन मैदान में जाकर शिकार भी खेला करता था, जिससे उसका बहुत कुछ मन बहलाव हो जाता। साइबेरिया के निर्वासितों से लेनिन पत्र-व्यवहार तो कर सकता था, परन्तु किसी से मिलने जुलने की उसे आज्ञा न थी। फिर भी वह अपनी युक्तियों द्वारा लोगों से मुलाक़ात कर लेता। कुछ दिनों बाद तो निर्वासितों को परस्पर मिलने जुलने की अनुमति दे दी गई।

शूशेंस्क में रह कर भी लेनिन का आन्दोलन-कार्य बन्द नहीं हुआ। वह बराबर क्रान्तिकारियों से पत्र-व्यवहार करता रहा। एक बार पुलिस ने सन्देह में लेनिन की कोठरी की तलाशी ली, परन्तु क्रान्तिकारी चिट्ठियाँ अलमारी की तह में रक्खी रहने के कारण पुलिस के हाथ न लग पाईं और वह निराश होकर चली गई। जो चिट्ठियाँ पुलिस ने देखीं वे प्रायः शिक्षा या सुधार-सम्बन्धी विषयों से सम्बन्ध रखतीं थीं, अतः उसे उनमें कोई आपत्ति न थी। १९०० ई० में लेनिन का निर्वासन-काल समाप्त हुआ और

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

वह साइबेरिया से सेण्ट पीटर्सबर्ग के लिए रवाना होने लगा। इस समय शूशेंस्क निवासियों की बड़ी ही बुरी दशा थी। उन्हें अपने परम हितैषी लेनिन को जाते देख बड़ी वेदना हो रही थी। शूशेंस्क से चलकर लेनिन कुछ दिनों ऊफ़ा नामक स्थान में ठहरा; पश्चात् अपनी स्त्री तथा सास को वहीं छोड़कर वह स्वयं सेण्ट पीटर्सबर्ग चला गया। वहाँ पहुँचने पर पुलिस ने फिर उसे राजविद्रोह के अपराध में गिरफ़्तार कर लिया, परन्तु अब की बार अपराध सिद्ध न होने पर वह दस दिन बाद ही जेल से छोड़ दिया गया।

इस समय लेनिन ने सेण्ट पीटर्सबर्ग में रह कर वहाँ की प्रजा के उद्धारार्थ अनेक उपाय सोचे, परन्तु वहाँ की परिस्थिति का भली भाँति अध्ययन करने के अनन्तर वह इस परिणाम पर पहुँचा कि रूस में रह कर उसको क्रियात्मक आन्दोलनों में कुछ विशेष सफलता नहीं हो सकती—न पत्र निकल सकता है और न प्रत्यक्ष रूप से मज़दूरों के लिये कुछ किया जा सकता है। ज़ारशाही के इशारे पर नाचने वाली पुलिस इस दशा में कुछ होने देना नहीं चाहती। यह सोच विचार कर लेनिन ने रूस छोड़ देना ही ठीक समझा और फ़्रांस या जर्मनी में रह कर ज़ार की निरंकुशता के विरुद्ध युद्ध करने का निश्चय किया। सेण्ट पीटर्सबर्ग से चल कर लेनिन पेरिस (फ़्रांस) पहुँचा और वहाँ उसने ज़ारशाही के विरुद्ध कई व्याख्यान दिये। व्याख्यानों में यह बात स्पष्ट रूप से प्रकट की गई कि यदि रूस के स्वेच्छाचार पूर्ण ज़ार-शासन की जड़ उखाड़ फेंकने के लिये हिंसा से काम लिया जाय तब भी कुछ अनुचित नहीं है। जिस प्रकार सम्भव हो—वैध या अवैध रीति से—रूस के ज़मींदारों और अमीरों का खोज खो देना चाहिये।

फ़्रांस से चलकर लेनिन जर्मनी में आया और वहाँ उसने म्यूनिच नगर से 'इस्क्रा' नामक पत्र निकालने की अपनी बहुत पुरानी

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

योजना कार्यरूप में परिणत की। 'इस्क्रा' का अर्थ है 'चिनगारी'। लेनिन का विश्वास था कि चिनगारी से ही भीषण ज्वाला प्रकट होती है, अतएव उसने अपने पत्र का वही नाम रक्खा। पत्र की सहायता के लिये दो सहायक और मिल गये जिनसे कार्य में और भी सुविधा हुई। इस्क्रा में सारी सामग्री ज़ारशाही के विरुद्ध रहती थी। उसमें ज़ार की निरंकुशता को नष्ट करने के लिये नाना प्रकार के साधन और उपाय बताये जाते थे। इस काम को करते हुए लेनिन और उसके साथियों को अपने नाम और वेश बदल कर रहना पड़ता था। ऐसा करने से उन्हें रूस के क्रान्तकारियों के साथ पत्र-व्यवहार करने में सरलता और सुविधा होती थी तथा पत्र-व्यवहार करने वाले रूसी लोग भी पुलिस की क्रूर दृष्टि से बचे रहते थे। चिट्ठी-पत्रियों में भी प्रायः सांकेतिक भाषा का ही उपयोग किया जाता था। उन संकेतों को षड्यन्त्रकारियों के सिवा और कोई न समझ पाता था। संकेतलिपि के अनुसार आलू या सन्तरा से बम, अखरोट से बन्दूक़ की गोली, चीनिया बादाम से तमंचे की गोली आदि का बोध होता था। इस्क्रा के लिये रूस के समाचार प्रचुरता से मिल जाते थे। जर्मनी में रहने वाले रूसियों के पास निजी चिट्ठियों द्वारा जो खबरें पहुँचती थीं, वे सब लेनिन के पत्र में प्रकाशित हो जाती थीं। इस्क्रा के कई संवाददाता तो वेश बदल कर सारे रूस में यात्रा किया करते थे। इनके द्वारा भी ख़ूब ख़बरें मिलती थीं।

लेनिन के अज्ञातवास के कारण उसकी स्त्री क्रुप्सकेया को उससे मिलने जुलने में बड़ी कठिनाई हुई। एक बार उल्फा से चलकर वह अपने पति से मिलने म्यूनिच पहुँची, परन्तु उसका कोई ठीक ठिकाना न होने पर उसे बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा। न जाने किस-किस के दर्वाज़े खट-खटाने के बाद क्रुप्सकेया की लेनिन से भेंट हो पाई। म्यूनिच में लेनिन की डाक परिचित

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

अड़ोसी-पड़ोसियों के पते से आती थी। कभी-कभी षड्यन्त्रकारियों द्वारा गुप्त चीजें तकिए के पारसल में रखकर भेजी जाया करती थीं। इस्का के सम्पादन में 'प्लेख नोव' नामक व्यक्ति से बहुत साहाय्य प्राप्त होती थी। कुछ दिनों क्रूसकेया से भी अच्छी मदद मिली। प्रेस सम्बन्धी असुविधाओं और साथियों के स्थान विषयक मतभेद के कारण लेनिन ने जर्मनी छोड़कर इङ्गलैंड जाने का निश्चय किया। कुछ साथियों ने स्विट्ज़रलैंड जाने की सलाह दी, परन्तु वहाँ से इस्का पत्र का प्रकाशित करना ख़तरे से खाली न था। अस्तु;

जर्मनी से चल कर लेनिन इँगलैण्ड पहुँचा और वहाँ उसने अपना नाम 'रिशर' बतलाया। रिशर नाम से वह वहाँ जर्मन समझा जाने लगा। लेनिन अँग्रेजी अधिक न जानता था। अतः लन्दन में पहुँच कर उसने दो मित्रों से अँग्रेज़ी पढ़ी और बदले में उन्हें रूसी भाषा सिखाई। लन्दन के प्रवास काल में भी वह मज़दूरों से अधिक मिलता था। जिन स्थानों में मज़दूरों के एकत्र होने की सम्भावना रहती थी, उन्हीं में वह प्रायः जाया करता था। लन्दन के मज़दूर उससे प्रेम भी बहुत करने लगे थे। थोड़े दिनों में लेनिन के अन्य साथी भी एक-एक करके लन्दन आ गए। इस्का के प्रकाशन-स्थान के सम्बन्ध में फिर मत-भेद हुआ। अधिकतर साथियों की इच्छा जेनेवा को मुख्य स्थान बनाने की हुई, परन्तु यह बात लेनिन को पसन्द न थी। वह लन्दन में रह कर ही आन्दोलन करना चाहता था। अन्ततः अनिच्छा पूर्वक उसे अपने बहुसंख्यक साथियों की बात मान कर जेनेवा के लिए प्रस्थान करना पड़ा। जेनेवा पहुँच कर लेनिन को इतना अधिक दुःख हुआ कि वह बीमार पड़ गया। यहाँ आकर पत्र प्रकाशन सम्बन्धी कठिनाइयाँ और अधिक बढ़ गईं और पारस्परिक मत भेद ने भी उग्र रूप धारण कर लिया।

लेनिन का मुख्य लक्ष्य आन्दोलन की सफलता पर रहता था।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

वह कार्य सिद्धि के मार्ग में न्याय-अन्याय या झूठ-सच की परवा न करता था। यदि अन्याय अथवा मिथ्या भाषण से कार्य सिद्धि होती हो तो उसे उनके कार्यान्वित करने में किसी प्रकार का संकोच न होता था। उसके जीवन से ऐसे कई उदाहरण दिए जा सकते हैं, जब उसने अपनी उद्देश्य-सिद्धि के लिए अनुचित साधनों का आश्रय लिया। लेनिन के उद्योग से रूस में साम्यवादी प्रजातंत्र दल की स्थापना हुई। इस दल का एक अधिवेशन लन्दन में भी हुआ। कुछ दिनों बाद यह संघ दो दलों में विभक्त हो गया। एक दल का कहना था कि प्रबन्ध पद्धति को बिलकुल पलट कर रूस की सारी शासन सत्ता किसानों और मज़दूरों के हाथों में सौंप देनी चाहिए। दूसरा दल चाहता था कि अमीरों और ज़मींदारों को साथ लेकर धीरे-धीरे आन्दोलन करना चाहिए। एकदम क्रान्ति के पक्ष में अधिक लोग थे। लेनिन इस उग्र दल का अगुआ था, अतएव साम्राज्यवादी संघ में इसी दल की जीत हुई और वह बोलशेविक कहलाया। रूसी भाषा में बहुपक्ष को बोलशेवी और अल्पपक्ष को मेनशेवी कहते हैं। उग्रदल बोलशेवी (बहुसंख्यक) होने के कारण बोलशेविक कहलाया। लेनिन के विचारों में इतनी उग्रता देखकर बहुत से लोगों ने उसका साथ छोड़ दिया, परन्तु लेनिन ने क्षण भर के लिए भी अपने निश्चित पथ से विचलित होने की बात न सोची। वह अपने उद्देश्यों पर बराबर अटल और अडिग रहा, और बोलशेविक दल का अग्रगन्ता या संस्थापक होने के कारण इतना प्रसिद्ध हुआ। यदि उस समय लेनिन विचारों की इतनी दृढ़ता न दिखाता तो बहुत सम्भव है कि रूस को वर्त्तमान रूप प्राप्त न हो सकता।

रूस में निरंकुशता का नंगा नाच हो रहा था; अत्याचारी अधिकारियों के अन्यायों से चारों ओर त्राहि-त्राहि मची हुई थी; ज़मींदारों और पूँजीपतियों ने अपनी शोषण पद्धति द्वारा मज़दूर

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

और किसानों को तबाह कर रक्खा था। ग़रीबों की बात पूँछने वाला कहीं कोई दिखाई न देता था। उधर निर्वासित व्यक्तियों ने रूस की प्रजा में क्रान्ति की भावना पैदा कर दी थी। तरह-तरह के षड्यंत्र रचे जा रहे थे, अवसर मिलने पर राज कर्मचारी और पूँजी-पतियों की हत्याएँ कर दी जाती थीं। ज़ारशाही के विरुद्ध उग्रता की आग भड़की हुई थी। ऐसे समय में रूस का जापान के साथ युद्ध छिड़ जाना और भी भयानक घटना हुई। एक ओर रूसी प्रजा में असन्तोष की आग धधक रही थी, दूसरी ओर ज़ार की अयोग्य और अव्यवस्थित सेना; ऐसी विषम परिस्थिति में विजय की तो सम्भावना ही क्या हो सकती थी। आख़िर छोटे-से संगठित जापान ने विशालकाय रूस को बुरी तरह पछाड़ दिया। स्वयं रूसियों द्वारा रूस के प्रधान मन्त्री की हत्या की गई, और क्रान्ति की अग्नि बड़े वेग से भभक उठी।

इस अवसर से लाभ उठाने के लिए लेनिन ने कोई प्रयत्न उठा न रक्खा। उसने मज़दूरों और किसानों को प्रोत्साहन दे-देकर पूरी तरह भड़काया, यहाँ तक कि क्रान्ति की चिनगारियाँ भयङ्कर लपटों के रूप में दिखाई देने लगीं। हत्याओं की संख्या दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ने लगी। अत्याचार-पीड़ित प्रजाजनों ने पूँजी-पतियों और ज़मींदारों के घर फूँकने शुरू कर दिए। छोटे-बड़े सभी नगरों में भीषण विद्रोह उठ खड़ा हुआ। क्रान्ति-देवी मूर्तिमती कालिका होकर आ विराजी। राज्याधिकारियों को प्राण बचाने कठिन हो गए। ज़ार सरकार की ओर से ज्यों-ज्यों दमन दुनाली दाग़ी जातीं, त्यों-त्यों विद्रोह का बाज़ार और भी अधिक गरम होता जाता। एक ओर क्रान्तिकारियों की सेना अपने उचित अधि-कारों के लिए अड़ी हुई थी, दूसरी ओर शासन सत्ता अपनी निरं-कुशता को बनाये रखने पर तुली हुई थी। ज़ारशाही की ओर से आन्दोलन को दबाने के लिए सिरतोड़ प्रयत्न किया जा रहा था,

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

सरकारी गुप्तचर जनता के साथ विश्वासघात कर अपनी कारगुज़ारी दिखाने में अग्रसर दिखाई देते थे। क्रान्तिकारी मज़दूरों की भीड़ पर गोले-गोली चलाना एक साधारण-सी बात हो गई थी। रूसी पुलिस या सेना बात की बात में सहस्रों निरीह प्रजाजनों का संहार कर देने में अपना गौरव समझती थी। कभी-कभी तो बाज़ारों और गलियों में लोथों पर लोथें पड़ी दिखाई देती थीं।

घोर दमन होने पर भी क्रान्तकारियों का आन्दोलन बढ़ता ही गया. ऐसा शायद ही कोई मिल या कारख़ाना बचा हो जिसके मज़दूरों ने हड़तालों में भाग लेना अपना कर्त्तव्य न समझा हो। यह देखकर सरकारी दमन ने और भी उग्र रूप धारण किया। खोज-खोज कर क्रान्तिकारी फाँसी के तख़्ते पर लटकाये जाने लगे। लेनिन इस सारे आन्दोलन में गुप्त रूप से बराबर सम्मिलित रहा, परन्तु जब उसे दमन की उग्रता के कारण उद्देश्य-पूर्ति होती दिखाई न दी, तो वह रूस छोड़ कर फ़िनलैण्ड चला गया।

लेनिन के चले जाने पर ज़ारशाही का दमन-दावानल बड़ी भयङ्करता से धधकने लगा। हज़ारों देशभक्त फाँसी के झूले पर लटका दिये गये। पुलिस स्वेच्छाचारिता पूर्वक प्रजा का संहार करने लगी; सेना के आतङ्क का ठिकाना न रहा। परिणाम यह निकला कि क्रान्तिकारी आन्दोलन दब गया। लेनिन के प्रायः सब साथियों ने उसका साथ छोड़ दिया। उसके अनुयायी अब केवल कुछ विदेशी रह गये थे। आन्दोलनकारी मजदूरों की ऐसी निर्बलता देखकर लेनिन के दुख का ठिकाना न रहा। वह मन ही मन सोचने लगा कि प्राणों के मोह के कारण जो लोग दमनचक्र से इस प्रकार भयभीत हो सकते हैं उनके बलबूते पर स्वतन्त्रता-संग्राम में विजयी होने की आशा करना दुराशामात्र है। अपने अनुयायियों की ऐसी कायरता देख लेनिन को उनसे घृणा-सी होगई और रूस की प्रजा का भविष्य उसे अत्यन्त अन्धकार-मय दिखाई देने लगा।

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

भयङ्कर दमन के साथ साथ ज़ार ने प्रजा को सन्तुष्ट करने की भी चेष्टा की, परन्तु यह चेष्टा अत्यन्त आडम्बरपूर्ण थी। उसमें वास्तविकता का लेश भी न था। राजकार्य में सलाह देने के लिये ड्यूमा (पार्लियामेण्ट) नामक संस्था की स्थापना की गई, जिसमें प्रजा द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि सम्मिलित थे। ड्यूमा को सलाह देने का अधिकार दिया तो गया, परन्तु इस सलाह को मानना न मानना ज़ार की इच्छा पर निर्भर था। फिर ड्यूमा में ज़मींदारों और पूँजीपतियों के चुने हुए खुशामदी तथा चापलूस प्रतिनिधियों की ही प्रधानता थी। ऐसी पार्लियामेण्ट का जो कुपरिणाम हो सकता था अन्त में वही हुआ।

जैसा कि ऊपर कहा गया, रूस में आन्दोलन को दबता देख लेनिन फ़िनलैण्ड चला गया था। वहाँ उसने अन्तर्राष्ट्रिय महासभा में यह प्रस्ताव रक्खा कि पूँजीवाद और ज़मींदारी की जड़ उखाड़ने के लिए सारे संसार में साम्यवादियों की ओर से क्रान्तिकारी आन्दोलन किया जाय। परन्तु उसका यह प्रस्ताव स्वीकृत न हो सका। इससे निराश होकर लेनिन जेनेवा पहुँचा और वहाँ अपने विचारों का प्रचार करने के लिये उसने एक पत्र निकाला। लेकिन वहाँ नरम दल वालों की संख्या अधिक होने के कारण पत्र बहुत दिन तक न चल सका। जेनेवा से लेनिन पेरिस गया और वहाँ से उसने अपना अख़बार निकाला। पेरिस में लेनिन को घोर आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा। उसके दिन बुरी तरह बीतने लगे; भोजन आच्छादन की भी ठीक-ठीक व्यवस्था न रही। इसी बीच रूस के कुछ मजदूरों ने फिर हड़ताल करनी शुरू की और लेनिन को सलाह मशवरे के लिए बुला लिया गया। प्रजा की पुकार पर लेनिन रूस के समीप आस्ट्रिया के एक गाँव में पहुँच कर आन्दोलनकारियों का पथ-प्रदर्शन करने लगा। सैकड़ों क्रान्तिकारी लेनिन के पास आते और आवश्यक परामर्श करके वापस चले जाते।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

१९१४ ई० में महायुद्ध छिड़ जाने पर गुप्तचर के सन्देह में आस्ट्रिया सरकार द्वारा लेनिन गिरफ्तार कर लिया गया। वहाँ के सैनिक शासकों द्वारा अवश्य ही लेनिन को प्राणदण्ड दिया जाता परन्तु साम्यवादी होने के कारण उसे छोड़ दिया गया और वह स्विट्ज़रलैंड के एक नगर में रहने लगा। महायुद्ध में रूस की बड़ी दुर्गति हुई। जर्मनी ने उसे नाकों चने चबवा दिए। बहु संख्यक किन्तु रणकौशल और साहस शून्य रूसी सेना को मुँह की खानी पड़ी। उसके अयोग्य और अकर्मण्य नायक बुरी तरह खदेड़े गये। अगणित रूसी सिपाही युद्ध में कुत्ते की मौत मरे और लाखों शत्रु-सेना द्वारा क़ैद कर लिये गये। वास्तव में उस समय ज़ार-शासन के साथ रूसी सिपाहियों की बहुत कम सहानुभूति रह गई थी। वे ज्यों-त्यों ठेल ठालकर युद्ध में भेजे जाते थे। ठोक पीटकर वैद्यराज बनाये जाने वालों की जो दशा होनी चाहिये वही रूसी सैनिकों की होती थी।

महायुद्ध में पराजय होने के कारण रूसी प्रजा की बड़ी ही शोचनीय दशा हो गई थी। लोग भूख के मारे तड़पने लगे; दाने-दाने को भटक गए; लाखों सैनिक युद्ध में काम आ जाने के कारण खेतों को काटने वालों की कमी पड़ गई। सर्वत्र क्रोध और असन्तोष की भयङ्कर भावना दिखाई देने लगी; ज़ार सरकार कायर की तरह यह सब देखते हुए भी किसी प्रकार की व्यवस्था करने में अपने को समर्थ न पाती। ऐसी प्रतिकूल परिस्थिति में लाल झण्डे के नीचे लाखों मजदूरों ने एकत्र होकर क्रान्ति की घोषणा की। विराट् जुलूस निकाले गए। उधर क्रान्तिकारियों पर गोली चलाने से सेना ने इनकार कर दिया मानों इस प्रकार सैनिकों ने क्रान्तिकारियों के साथ अपनी सहानुभूति का प्रत्यक्ष परिचय दिया। अन्ततोगत्वा १२ मार्च १९१७ को क्रान्तिकारियों ने राज-धानी और राजभवन पर अधिकार कर लिया और ज़ार उसके

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

परिवार सहित बन्दी बना लिया गया। इस समय रूस का राजकाज सँभालने के लिए पैट्रोग्रेड में सोवियट के नाम से मज़दूरों और सैनिकों की प्रतिनिधि संस्था बनाकर उसे शासन भार सौंप दिया गया।

क्रान्ति में सफलता तो मिली परन्तु क्रान्तिकारियों का ठीक-ठीक नेतृत्व करने के लिए एक निपुण नेता की आवश्यकता बुरी तरह खटक रही थी। योग्य नेता के अभाव में रूस की शासनसत्ता क्रान्तिकारियों के हाथों में न रह सकी। ड्यूमा के प्रतिनिधियों ने सोवियट सदस्यों को समझा बुझाकर एक अस्थाई सरकार क़ायम की जिसमें अधिकतर ज़मींदारों और पूँजीपतियों के ही प्रतिनिधि थे। इस समय लेनिन स्विटज़रलैण्ड से रूस पहुँचा। परिस्थिति का अध्ययन करने पर उसे मालूम हुआ कि ड्यूमा की सलाह से स्थापित अस्थाई सरकार में मध्यम वर्ग के प्रतिनिधियों की ही प्रधानता है, मज़दूरों का उसमें कुछ भी हाथ नहीं है। उसने सोचा कि यदि ऐसी ही सरकार रही, तो उसमें ग़रीब प्रजा का कुछ भी अंश न रहेगा बल्कि सारी सत्ता फिर पूँजीपतियों के पास पहुँच जायगी। ऐसी हालत में लेनिन ने समाजवाद की स्थापना पर बहुत ज़ोर दिया और उसके लिए बचे-खुचे किसानों तथा मज़दूरों को उकसाया। अस्थाई सरकार को यह बात बहुत बुरी लगी और प्रधान मंत्री ने लेनिन को गिरफ़्तार करने की आज्ञा देदी परन्तु लेनिन अपने कौशल से फ़िनलैण्ड चला गया। फ़िनलैण्ड रूस के अधीन स्वतंत्र प्रान्त था। यहाँ की जल-थल सेना पर लेनिन ने बहुत प्रभाव डाला जिससे वह उसकी आज्ञानुवर्तिनी हो गई। लेनिन के उद्योग से फ़िनलैण्ड के क़िले पर विद्रोहियों का अधिकार हो गया। यहाँ रह कर लेनिन ने विज्ञप्तियों द्वारा रूस के क्रान्तिकारियों को बहुत प्रोत्साहन दिया।

१९१७ की क्रान्ति के बाद रूस की जनता एकदम जाग उठी

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

और उसने जगह-जगह किसानों और मज़दूरों की सोवियट क़ायम करली। अपनी रक्षा के लिए फ़ौज भी बनाई जो लाल सेना के नाम से प्रसिद्ध हुई। इस संगठित सेना के साहाय्य से किसानों ने बलपूर्वक ज़मींदारों से ज़मीन छीन ली। इसके लिए बोलशेविक सेना को अस्थाई सरकार की फ़ौज से कितने ही विकट संघर्ष करने पड़े। सोवियट सभाओं और लाल सेनाओं के सुव्यवस्थित हो जाने पर लेनिन की अध्यक्षता में फिर सशस्त्र क्रांति की तैयारी की गई। क्रान्ति की घोषणा करने से पूर्व लेनिन ने बड़ा ही मार्मिक भाषण दिया जिसमें रूस की अस्थाई सरकार के मूर्खतापूर्ण कार्य-कलाप की तीव्र आलोचना की गई। इस समय लेनिन ने यह भी कहा कि यदि इस विद्रोहपूर्ण क्रान्ति में सफलता प्राप्त हुई तो निश्चय ही किसानों और मज़दूरों का बहुत बड़ा हित होगा। ७ नवम्बर को सशस्त्र क्रांन्ति का प्रारम्भ हुआ। तोपें आग उगलने लगीं, बन्दूक़ों की धूँ-धाँय से दशों दिशायें गूँज उठीं; रेल, डाक, बैंक, टेलिफ़ोन सब पर क्रांतिकारियों ने क़ब्ज़ा कर लिया। जिस किसी ने क्रांति की भावना के विरुद्ध ज़रा भी आवाज़ निकाली वह तुरन्त भून दिया गया। ज़ार के राजकीय भवनों पर क्रांति-कारियों का झण्डा फहराने लगा। इस समय लेनिन ने फिर क्रान्तिकारियों का साहस बढ़ाने के लिये उन्हें बड़े अच्छे शब्दों में प्रोत्साहन दिया और जनता को विश्वास दिलाया कि जिन क़ानूनों से सर्वसाधारण के हित की हानि हो रही है और जो लोगों के स्वार्थ एवं स्वातन्त्र्य को नष्ट करने वाले हैं वे सब नष्ट-भ्रष्ट कर दिये जायँगे। जिस ज़मीन पर अब तक निरंकुश ज़ार और अत्या-चारी ज़मींदारों ने क़ब्ज़ा कर रक्खा था, उस पर अब किसानों और मज़दूरों का अधिकार होगा।

लेनिन की अध्यक्षता में क्रान्तिकारियों का विजयी होना स्वाभा-विक ही था। सशस्त्र क्रान्ति में कृतकार्य होकर क्रान्तिकारियों की

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। लोग अपने निपुण नायक लेनिन को पाकर हर्ष से फूले न समाते थे। विजयी क्रान्तिकारियों ने राज-भवनों और समस्त सरकारी संस्थाओं पर तो पहले ही अधिकार कर लिया था, अब उन्होंने इस अस्थाई सरकार के सब मन्त्री भी क़ैद कर लिए। विजयी होकर लेनिन पेट्रोग्रेड के प्रधान गिरजे में गया। वहाँ पादरियों ने अन्य ज़ारों की तरह उसका भी स्वागत करना चाहा परन्तु लेनिन ने ऐसे स्वागत का पात्र बनने से स्पष्ट इन्कार कर दिया और बड़े ज़ोरदार शब्दों में कहा—"ईश्वरीय शक्ति में विश्वास करना अपने आपको धोखा देना है। जो कुछ होता है, जनता की संघ-शक्ति से होता है। यह क्रान्ति भी किसानों और मज़दूरों के उद्योग, उत्साह और साहस का सुपरिणाम है। इसके लिए किसी देवता या ईश्वर को श्रेय देना अविवेकता युक्त अदूर-दर्शिता है। इस युग के सच्चे देवी-देवता किसान और मज़दूर हैं। उनके खेत खलियान और कल-कारखाने गिरजे या प्रार्थना भवनों का रूप धारण कर चुके हैं। मुझे ईश्वरीय सत्ता पर कोई विश्वास नहीं, न मैं इस प्रकार की धर्म-संस्थाओं की आवश्यकता समझता हूँ।" लेनिन के साथ क्रान्तिकारियों की बहुत बड़ी भीड़ भी उस गिर्जे में गई थी। भड़की हुई भीड़ ने ज़ार की क़ब्र खोद कर उसमें से जवाहिरात निकाल लिए। और भी बड़े लोगों की क़ब्रों को तोड़ फोड़ कर उनमें भरी हुई रत्नराशि की ख़ूब लूट खसोट की।

सारे रूस पर क्रान्तिकारियों का अधिकार हो गया। पेट्रोग्रेड और मास्को पर उनकी विजय-पताका फहराने लगी। दूसरी सोवियट काँग्रेस के हाथों में शासन की बागडोर दी गई और लेनिन की अध्यक्षता में चौदह बोलशेविक प्रतिनिधियों की एक सरकार क़ायम की गई। प्रत्येक प्रतिनिधि के अधीन एक-एक विभाग किया गया और उनका पद मन्त्री न होकर 'कमिसार' नाम से पुकारा गया। इन चौदह कमिसारों में ट्राटस्की और स्टालिन भी थे।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

यद्यपि महायुद्ध में रूसियों की अपार जन, धन हानि हुई थी, और उसके जीतने की कोई आशा न रह गई थी, परन्तु फिर भी रूस की अस्थाई सरकार युद्ध में अपने सैनिक भेजती ही रही। यह बात लेकिन को बहुत नापसन्द थी। क्रान्ति में विजयी होने पर उसने शत्रुओं से समझौता किया और रूस का बहुत बड़ा भाग खोकर युद्ध से पिण्ड छुड़ाया। क्रान्तिकारियों की विजय और उनकी पूँजीवाद विरोधिनी नीति के कारण रूस के ज़मींदार, रईस तथा अन्य पूँजीपति बहुत असन्तुष्ट थे। परन्तु उनका कुछ वश न चल सकता था। क्रान्तिकारियों ने रूस में खुले हुए विदेशी पूँजीपतियों के कल-कारख़ाने और बैंकों को भी राष्ट्रिय सम्पत्ति में सम्मिलित कर लिया था। सोवियट सरकार ने राष्ट्रिय ऋण चुकाना भी अस्वीकार कर दिया था। इससे विदेशी सरकार अप्रसन्न होकर गुप्त रूप से क्रान्तिकारियों के विरुद्ध रूस के पूँजीपतियों को सहायता दे रही थी। फलस्वरूप रूस में जगह-जगह क्रान्ति विरोधी दल दिखाई देने लगे थे। कई स्थानों पर ज़ार के ज़माने के कुछ पुराने सैनिक अफ़सरों ने अधिकार जमा लिए थे। क्रान्ति विरोधियों की संख्या धड़ाधड़ बढ़ रही थी। अभिप्राय यह कि जीत के बाद भी बोलशेविकों को प्रतिगामिनी शक्तियों से बहुत बड़ा संघर्ष करना पड़ा। इस अवसर पर क्रान्तिकारियों की लाल सेना ने बड़ी बहादुरी से काम किया। उसने विरोधी दलों को बड़ी वीरता से दबाया और एक बार फिर उनके दाँत खट्टे कर दिए। इस समय विरोधियों को गुप्त रूप से दण्ड देने वाली क्रान्तिकारियों की 'चेका' नामक समिति ने भी काम किया।

लेनिन पर विरोधियों द्वारा दो बार प्राणघातक हमले भी किये गये। पहला वार तो ख़ाली गया परन्तु दूसरे आक्रमण से जो एक भरी सभा में एक महिला द्वारा किया गया था, लेनिन का शरीर क्षत-विक्षत हो गया। गोली के घातक प्रहार से वह कई दिन बेहोश

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पड़ा रहा। बड़े उपचार के बाद उसकी तंद्रा टूटी और स्वस्थ होने पर वह फिर शासन सम्बन्धी कार्य में जुट गया। लेनिन ने रूस में साम्यवाद की स्थापना की और पूँजीपतियों तथा ज़मींदारों की व्यक्तिगत सम्पत्ति छीन कर राष्ट्र में मिला दी। साम्यवाद के अनुसार कोई भी किसान आवश्यकता से अधिक वस्तु न रख सकता था। मार्ग में जो असुविधायें और कठिनाइयाँ आती गईं उन्हें भी लेनिन ठीक करता गया और थोड़े ही दिनों में उसने सारी आर्थिक व्यवस्था ठीक कर दी।

देश की चिन्ता में लेनिन की शारीरिक और मानसिक शक्ति बहुत कुछ क्षीण होगई थी, अस्वस्थता के कारण उसका शरीर जर्जर दिखाई देता था, परन्तु ऐसी हालत में भी लेनिन ने लेख लिखने और व्याख्यान देने का काम बन्द नहीं किया। अन्ततः उस पर पक्षाघात रोग का आक्रमण हुआ, परन्तु ऐसी दशा में भी वह कुछ सोचता-विचारता ही रहता था। ज़रा अवस्था सुधरने पर वह फिर देश-सेवा के काम में लग गया, परन्तु अब उसकी शक्ति बहुत क्षीण हो चुकी थी। दूसरी बार फिर उस पर फ़ालिज पड़ा; बोल बन्द होगया; कभी अवस्था सँभलती और कभी फिर गिर जाती। अन्ततः ३१ जनवरी १९२४ ई० को गोर्की नामक स्थान में उसकी मृत्यु होगई। लेनिन का शव मास्को में अब तक सुरक्षित है। जिस भवन में यह शव रक्खा है वह दिन में कुछ देर के लिए खोला जाता है। दूर-दूर के दर्शक इस महामति के शव का दर्शन करने आते हैं और उसकी पवित्र स्मृति में अपनी श्रद्धांजलि चढ़ाते हैं।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

जोज़ेफ़ गेरीबाल्डी

उन्नीसवीं शताब्दि के आरम्भ-काल में इटली की दशा बड़ी ही शोचनीय हो रही थी। किसी भी देश पर विदेशियों के शासन में जो अत्याचार, अन्याय और उत्पीड़न हो सकते हैं, उन सभी का क्रीड़ाक्षेत्र तत्कालीन इटली बना हुआ था। उस समय इटली के उत्तरी भाग पर आस्ट्रियनों का अधिकार होने के कारण उस प्रान्त की प्रजा तो पराधीनताजन्य क्लेशों का केन्द्र बनी हुई थी ही, परन्तु दक्षिणी इटली में वहीं के धर्म-पुरोहित पोपों का शासन भी कम भयङ्कर एवं कष्टप्रद न था। अकर्मण्य, विलासी और निर्दय पोप आस्ट्रियन शासकों के आदेश और संकेतानुसार निरीह प्रजा के ईश्वर-प्रदत्त अधिकारों को कुचलने, उस पर जघन्य से जघन्य अत्याचार एवं घृणित से घृणित प्रहार करने में भी नहीं चूकते थे। अभिप्राय यह कि स्वदेशीय पोपों का शासन विदेशीय आस्ट्रियनों के शासन से भी निकृष्टतर था। बेचारी इटालियन प्रजा चक्की के पाट स्वरूप दोनों शासनों के बीच पिसी जा रही थी।

ऐसी अशान्ति के समय—जब कि इटालियन प्रजा भयङ्कर अत्याचारों से त्रस्त और ध्वस्त होकर त्राहि-त्राहि पुकार रही थी, परम प्रभु परमात्मा ने उसकी करुण पुकार सुनी और उसके

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

उद्धारार्थ एक महान् आत्मा को इटली में भेजा । यह महात्मा इटली का उद्धारक, इतिहास-प्रसिद्ध वीर जोजेफ गेरीबाल्डी था, जो सन् १८०७ ई० के जौलाई मास में नाइस नगर निवासी एक जहाजी कप्तान (Captain) के घर में अवतीर्ण हुआ ।

गेरीबाल्डी बचपन ही से स्वतन्त्रता-प्रिय, निर्भीक, दयालु और चंचल-स्वभाव था । पढ़ने-लिखने की अपेक्षा इसका मन खेलने-कूदने, समुद्र में तैरने एवं नाव चलाने में अधिक लगता था । इसका यह अभिप्राय नहीं कि, वह पढ़ने-लिखने से जी चुराता था, प्रत्युत जितना वह खेल-कूद में चंचल था, उतना ही पढ़ने-लिखने में भी कुशाग्र बुद्धि था । गेरीबाल्डी में वीरता, साहसिकता, दृढ़ता और आत्मनिर्भरता के भाव भी बचपन ही से परिलक्षित होने लगे थे । ठीक भी है, "होनहार बिरवान के होत चीकने पात" ।

दीन-दुखियों और असहायों को देख बालक गेरीबाल्डी का दयार्द्र हृदय रो पड़ता था । वह अपने आपको सङ्कट में डालकर भी पीड़ित-प्रताड़ितों के सहायतार्थ सदैव बद्ध-परिकर रहता । एक बार की घटना है—एक स्त्री जल-पूरित खाड़ी में गिर गई और डूबने लगी । संयोग से आठ वर्ष के गेरीबाल्डी की दृष्टि उस पर पड़ी । वह विना किसी हिचकिचाहट के अगाध जल-राशि में कूद पड़ा और तैरता हुआ उस स्त्री को पानी से बाहर निकाल लाया। ऐसी ही एक दूसरी घटना और भी है—एक दिन गेरीबाल्डी ने सोचा 'जिनोआ' चलकर वहाँ की सैर करनी चाहिये । इस विचार के मन में आते ही उसने विना किसी से पूछे-गछे एक छोटी-सी नाव पर साथियों सहित आरूढ़ हो जिनोआ की ओर प्रस्थान कर दिया। उस समय गेरीबाल्डी ने न तो यह सोचा कि अथाह सागर की उत्ताल तरङ्गों पर विना नौ-चालन विद्या जाने इतनी लम्बी यात्रा कैसे पूरी की जायगी, और

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

न यही विचारा कि मार्ग में अथवा जिनोआ पहुँचकर खाने-पीने और ठहरने की क्या व्यवस्था होगी । वह तो सौभाग्य से उसके पिताको किसी तरह इस घटना की सूचना मिल गई, जिससे उसने आदमी दौड़ाकर उसे पकड़वा मँगाया । इन घटनाओं से गेरीबाल्डी की परोपकारिता साहसिकता और निर्भीकता का परिचय भलीभाँति मिलता है ।

गेरीबाल्डी के पिता की इच्छा थी कि मेरा लड़का पढ़-लिख कर वकील, डाक्टर या पादरी बने, परन्तु गेरीबाल्डी को उल्लिखित तीनों कार्यों में से एक भी पसन्द न था । होता भी कैसे ? उसके द्वारा तो परम प्रभु को कुछ और ही कराना था । वह तो कुछ दूसरा ही प्रोग्राम लेकर धरा-धाम पर अवतीर्ण हुआ था । गेरीबाल्डी को सामुद्रिक जीवन अत्यन्त प्रिय था । उसने अपने खेल-कूद का क्षेत्र भी नौकाओं और जहाज़ों को ही बना रक्खा था । जहाज़ों के गुनों और मस्तूलों पर चढ़ना, समुद्र में कूदना और तैरना, डाँड चलाना और पाल तानना ये ही खेल उसे अत्यन्त प्रिय थे। वयस्क होने पर गेरीबाल्डी ने अपना पैतृक व्यवसाय ही पसन्द किया। जो कार्य उस जगन्नियामक अदृष्ट शक्ति द्वारा गेरीबाल्डी को सौंपा गया था, उसके सम्पादनार्थ उसे ऐसा ही संघर्षमय मार्ग ग्रहण करने की जरूरत थी, उस पथ का पथिक बनने के लिए उसे त्याग और तपस्यापूर्ण जीवन बनाने की ही आवश्यकता थी। उसकी सिद्धि तो आपत्तियों की आराधना और संकटों की उपासना द्वारा ही हो सकती थी । ये सब बातें वकील, डाक्टर या पादरी के सुखमय एवं विलासिता-पूर्ण जीवन में भला कहाँ सम्भव थीं !

आखिर गेरीबाल्डी सामुद्रिक विद्या सीखने और उसमें अनुभव प्राप्त करने लगा। थोड़े ही दिनों में उसने नाविक कला में पूरी-पूरी योग्यता सम्पादन कर 'कप्तान' का प्रमाणपत्र उपलब्ध कर लिया। अब क्या था, गेरीबाल्डी ने लम्बी-लम्बी समुद्र-यात्राएँ

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

करनी प्रारम्भ कर दीं, जिनके द्वारा उसे देश-विदेश की परिस्थितियों का सच्चा ज्ञान होने लगा।

गेरीबाल्डी ने जिस समय इटली निवासियों की पराधीनता-जन्य दुरवस्था को देखा और समझा तथा मनोमुख शासकों के अवाञ्छनीय अत्याचारों से पीड़ित प्रजाजनों का हृदय-द्रावक किन्तु मूक करुण क्रन्दन सुना, तो उसका करुणार्द्र हृदय व्याकुल हो उठा। उसी समय उसके अन्तःकरण में प्रजा-हित एवं देश-प्रेम का पवित्र पौधा अंकुरित हुआ। गेरीबाल्डी ने मन ही मन दृढ़ संकल्प किया कि जिस तरह भी हो सके, स्वर्गादपि गरीयसी जननी जन्मभूमि को पराधीनता-पाश से मुक्त करना ही होगा; विदेशी और स्वार्थ-साधक शासकों द्वारा पीड़ित-प्रताड़ित इटालियन प्रजा की संकट-शृंखला को छिन्न-भिन्न करना ही पड़ेगा।

संयोगवश इसी बीच में टेगेनरोग (Taganrog) की यात्रा करते हुए गेरीबाल्डी की एक जिनोआ निवासी से भेंट हुई। देश-दशा के सम्बन्ध में इस व्यक्ति के विचार भी गेरीबाल्डी से मिलते-जुलते थे। उस व्यक्ति को जब ज्ञात हुआ कि गेरीबाल्डी भी देश-प्रेम का दीवाना है, तो उसने इससे खूब खुलकर बातें कीं और अनेक ऐसे गुप्त समुदायों के पते इस को बताए, जो प्राणपण से देशोद्धार की धुन में लगे हुए थे। यह सब जानकर गेरीबाल्डी को जो प्रसन्नता हुई वह अवर्णनीय है।

सन् १८३० के लगभग इटली में क्रान्ति की एक लहर आई, बहुत दिनों से गाढ़ निद्रा में सोई हुई इटली की प्रजा ने करवट बदली और वह मातृ-भूमि के बन्धन काट फेंकने के लिए बद्ध-परिकर हो उठ खड़ी हुई। परन्तु अभी इटली के पूर्णतया सुदिन नहीं आए थे, अत्याचारी आस्ट्रियनों और प्रमादी पोपों का पाप-घट अभी भली भाँति भरा न था। फलतः असंगठित क्रान्तिकारियों को सुसंगठित शासकों ने जहाँ का तहाँ धर दबाया। देश-भक्ति के

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

दीवानों को सफलता देवी के दिव्यदर्शनों की जगह निष्फलता निशाचरी का मनहूस मुँह देखना पड़ा।

फिर क्या था, पोपों और आस्ट्रियनों ने मिलकर देश-सेवकों पर दमन-दुधारा चलाना शुरू कर दिया। सहस्रों स्वतन्त्रता देवी के उपासक जेलों में ठेल दिए और सैकड़ों देशभक्त तलवार के घाट उतार दिए। जनता पर अतंक स्थापित करने के लिए फ़ौजी प्रदर्शन प्रारम्भ हुए। प्रायः प्रत्येक नगर के बाज़ारों में, चौराहों तथा सार्वजनिक स्थानों पर, बड़ी-बड़ी भयङ्कर तोपें जमा दी गईं। थोड़े-से ही सन्देह में देश-सेवकों को खुले आम फाँसी पर लटका दिया जाने लगा। इस तरह इटली भर में निरंकुश शासकों की निर्दयता का नग्न प्रदर्शन हुआ और ख़ूब हुआ।

अपने उद्योग में अकृतकार्य होने पर भी धुन का धनी गेरीबाल्डी निराश नहीं हुआ। वह शासकों की आँख बचाकर अपने स्वातन्त्र्य-सत्र के लिए सामग्री जुटाने में संलग्न हो गया और इटालियन जनता में स्वाधीनता के सुन्दर विचार उत्पन्न करके उसे स्वतन्त्रता-समर के लिए सन्नद्ध एवं संगठित करने लगा। इसी बीच 'मार्सिलीस' नगर में महात्मा मात्सीनी से उसकी मुलाक़ात हुई। मात्सीनी उन दिनों अपनी ओजस्विनी वाणी और प्रभावशालिनी लेखनी द्वारा इटालियन जनता में देश-भक्ति के भद्र भाव भर रहा था। मात्सीनी से मिलकर गेरीबाल्डी को कल्पनातीत प्रसन्नता हुई। परस्पर विचार-विनिमय के अनन्तर मातृ-मन्दिर के दोनों पुजारियों ने आगे का कार्य-क्रम निश्चित किया। इन दोनों ही महापुरुषों के]हृदय से जहाँ पद-दलित प्रजा के लिए स्नेह और सहानुभूति का असीम सागर हिलोरें मार रहा था, वहीं उच्छृंखल शासकों के प्रति द्वेष का दुर्दमनीय दवदहन भी दहक रहा था। दोनों की एक ही लगन—एक ही साध थी; और वह यह कि जैसे भी हो सके, देश में से कुशासन का समू-

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

लोन्मूलन कर उसे स्वतन्त्र और संगठित राष्ट्र का रूप दिया जाय। महात्मा मत्सीनी के उपदेशों से और भी अधिक प्रभावित होकर गेरीबाल्डी दूने उत्साह से देश के काम में लग गया।

सन् १८३४ ई० में मात्सीनी और गेरीबाल्डी दोनों ने मिलकर देश-व्यापिनी क्रान्ति की तैयारी की, और सेवाय, सार्डीनिया आदि के छोटे-छोटे शासकों पर आक्रमण करने का प्रोग्राम बनाया। गेरीबाल्डी उन दिनों राजकीय समुद्री सेना में नौकर था। उसने अपने अधीनस्थ, बीस बड़ी-बड़ी तोपों तथा अन्य बहुत-सी समर-सामग्री से सुसज्जित एक जहाज़ को लेकर निश्चित समय पर आक्रमणकारियों में सम्मिलित हो जाने का निश्चय किया था। परन्तु देश के दुर्भाग्य से इधर तो आक्रमण की निश्चित तारीख़ से दो ही दिन पहले गेरीबाल्डी की नौकरी उक्त जहाज़ पर से हटा कर दूसरे साधारण जहाज़ पर बोल दी गई, उधर मत्सीनी के संघ में फूट पड़ जाने के कारण वह भी छिन्न-भिन्न-सा हो गया। फिर भी निश्चित प्रोग्राम के अनुसार अनेक स्थानों पर अन्यान्य संघों ने आक्रमण किया। गेरीबल्डी उस समय जिनोआ में था। वह अपने साथियों से छिपकर अकेला ही जहाज पर से निकल भागा और वहाँ के आक्रमणकारियों में जा मिला। परन्तु आज के प्रोग्राम की तो पड़वा ही बिगड़ चुकी थी। यहाँ का आक्रमण भी सफल न हुआ और सब क्रान्तिकारी शत्रुओं द्वारा तितर-बितर कर दिए गए। अकेला गेरीबाल्डी शत्रु-सेना के बीच घिर गया, परन्तु वह साहसी वीर अपनी चतुराई से शत्रुओं को चकमा देकर साफ़ निकल भागा।

शत्रुओं के चंगुल से निकल कर गेरीबाल्डी समीपस्थ एक गाँव में पहुँचा। वहाँ उसने अपनी फ़ौजी वर्दी तो उतार फेंकी, और एक देशभक्त ग्रामीण महिला से देहाती कपड़े माँग कर ग्रामीणों का-सा वेश बना लिया। उधर अपनी ड्यटी पर से

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

बिना सूचना और आज्ञा के अचानक ग़ायब हो जाने के कारण गेरीवाल्डी की गिरफ़्तारी के लिये आज्ञा निकाल दी गई थी, इसलिये पुलिस और फ़ौज के सिपाही सर्वत्र उसकी खोज कर रहे थे। गेरीवाल्डी ग्रामीण वेश में, पुलिस और फ़ौज वालों की दृष्टि से बचता, खेतों, जंगलों, पहाड़ियों और झाड़ियों में होता हुआ अपने घर (नाइस) की ओर चल दिया। कई दिन की कठिन यात्रा के पश्चात् भूखा-प्यासा और थका-माँदा वह वीर लुक-छिपकर अपने घर पहुँचा। परन्तु पुलिस के भय का भूत उसके सिर पर सवार था, इसलिये वह घर पर अधिक न ठहर सका। केवल एक रात्रि विश्राम करने के अनन्तर गेरीबाल्डी वहाँ से भी मार्सिलीस नगर की ओर चल पड़ा।

गेरीवाल्डी ऊबड़-खावड़ मार्ग से तो यात्रा कर ही रहा था, रास्ते में उसे एक बहुत बड़ी नदी मिली। शीतकाल, बरफ़ मिला हुआ नदी का पानी, जिसमें यदि शरीर का कोई भी अंग डाला जाय, तो ऐसा जान पड़े मानो शरीर में वह अंग रहा ही न हो। समीप में न कोई नाव न पुल। बड़ी कठिन समस्या उपस्थित हुई। परन्तु असीम साहसी वीर गेरीबाल्डी उससे लेश भी विचलित नहीं हुआ। जो दुस्साध्य व्रत उसने लिया हुआ था, और जो कण्टकाकीर्ण, कठिन सेवा-मार्ग उसने ग्रहण किया था, उसमें उसे इससे भी कड़ी-कड़ी कठिनाइयों का सामना करना था। गेरीबाल्डी "मातृ-भूमि की जय" बोलकर नदी में कूद पड़ा और बरफ़ के टुकड़ों पर तैरता हुआ नदी को पार कर गया। यद्यपि बरफ़ के टुकड़ों से टकरा कर उसके अंग फट गये थे, उनसे रुधिर बहने लगा था; परन्तु उसने इसकी किंचित् भी परवा नहीं की। नदी-गर्भ से निकल कर कुछ क्षण वह तट पर बैठा और फिर शीघ्र ही उठकर अपने उद्दिष्ट स्थान की ओर चल पड़ा। गेरीबाल्डी अभी नदी-तट से थोड़ी ही दूर गया था, कि वहाँ पहरे पर नियुक्त सैनिकों से उसकी

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

असम्भावित मुठभेड़ होगई।

सैनिकों ने गेरीबाल्डी को पहचान कर तुरन्त गिरफ़्तार कर लिया और अपनी चौकी पर ले जाकर भूमि से सोलह फ़ीट की ऊँचाई पर बने एक कमरे में बन्द कर दिया। रात्रि में जब सब पहरे वाले निश्चिन्त होकर गाढ़ निद्रा में लीन थे, गेरीबाल्डी खिड़की के मार्ग से निकल नीचे कूद पड़ा और पहाड़ों की ओर चला गया। वहाँ से उसने दुर्गम पर्वत-मालाओं और निर्जन जंगलों में होकर ही आगे जाने का निश्चय किया। वह चाँदनी रात में ग्रह-नक्षत्रों के सहारे मार्ग निर्धारित करता अपने गन्तव्य स्थान की ओर चल पड़ा। नौ-संचालनार्थ पढ़ी हुई खगोल विद्या ने इस समय गेरीबाल्डी के पथ-प्रदर्शन में बड़ी सहायता की।

आगे चलकर गेरीबाल्डी एक ग्रामीण सराय में ठहरा। यहाँ वह सराय के मालिक द्वारा पहचान लिया गया। सराय के मालिक की इच्छा हुई की गेरीबाल्डी को गिरफ़्तार करा दिया जाय। परन्तु उस वीर की विवेचना-शील बुद्धि से सराय के मालिक का वह भाव छिपा न रह सका। इसके पश्चात् वाक्पटु गेरीबाल्डी ने उसे अपने वाग्जाल में ऐसा फँसाया कि वह गिरफ़्तार कराने की बात को बिलकुल ही भूल गया।

यहाँ से चलकर गेरीबाल्डी मार्सिलीज़ पहुँचा। वहाँ उसने "ली प्यूपिल सेवेरेन" नामक समाचार-पत्र में एक राजकीय सूचना पढ़ी, जिसमें गेरीबाल्डी को पकड़ने वाले के लिए प्रचुर धनराशि पारितोषिक रूप देने की घोषणा के साथ ही पकड़े जाने पर उसका निर्दयता पूर्वक वध कर डालने की आज्ञा दी गई थी। इस के सिवा नगर के सार्वजनिक स्थानों पर भी गेरीबाल्डी के हुलिया और चित्र सहित उक्त आज्ञा चिपकवा दी गई थी। पुलिस के अतिरिक्त और भी अनेकों अर्थ-लोलुप देश-द्रोही गेरीबाल्डी को पकड़ने की घात में थे। गेरीबाल्डी ने इस प्रकार अपने विरुद्ध

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

वातावरण देख विचार किया कि इस भाँति जान-बूझ कर निष्प्रयोजन प्राण देने से तो देश का लेश भी हित नहीं। इससे तो कुछ दिनों कहीं एकान्त स्थान में छिपकर उचित एवं अनुकूल अवसर की प्रतीक्षा करना ही ठीक होगा। उक्त निश्चयानुसार गेरीबाल्डी ने अपना नाम बदल कर "जोज़ेफ़" रख लिया और वह कहीं छिप कर रहने लगा।

जिन दिनों गेरीबाल्डी किसी गुप्त स्थान में अज्ञात वास कर रहा था, उन्हीं दिनों मार्सिलीज़ नगर पर भयंकर विसूचिका (हैज़ा) रोग का आक्रमण हुआ। इस संक्रामक रोग के भय से भीत लोग घर-बार और पुर-परिवार छोड़-छोड़ कर भाग गये। जो कुछ रह गये, वे मारे डर के रोग-ग्रस्त सगे-सम्बन्धी तक के समीप भी खड़े न होते थे। रोगी भले ही अपनी मौत मरे चाहे अपनी ज़िन्दगी जिये, पर उसकी ओर कोई झाँक कर भी न देखता था। मृत देहों को उठाकर उनकी अन्तिम क्रिया करने की भी कोई व्यवस्था न थी। अनेक स्थानों पर पड़ी लाशें सड़ रही थीं। जहाँ वे अरक्षित दशा में थीं, वहाँ चील-कौए उन्हें नोंच-नोंच कर खा रहे थे। नगर में वह वीभत्स दृश्य उपस्थित था कि देखने वालों के रोंगटे खड़े होते थे। कहीं कोई असहाय वृद्ध विसूचिका की विषम वेदना से विकल पड़ा-पड़ा कराह रहा था, तो कहीं निरीह बालक 'पानी-पानी' पुकारता हुआ दम तोड़ रहा था। कोई किसी की सुध लेने वाला न था। चारों तरफ त्राहि-त्राहि मची हुई थी।

गेरीबाल्डी ने जिस समय नगर पर महामारी के ऐसे भीषण प्रकोप की ख़बर सुनी, तो मनुष्य-प्रेम से परिपूर्ण उसका कोमल हृदय रो उठा। उसने उसी क्षण संकल्प किया कि, चाहे भले ही पुलिस के हाथों पड़ कर मुझे फाँसी पर चढ़ना पड़े, परन्तु ऐसे विषम संकट-काल में मैं असहाय मानव जाति की सेवा-सहायता अवश्य करूँगा। उस समय गेरीबाल्डी के मित्रों ने उसे बहुत

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

कुछ समझाया कि जान-बूझ कर खतरे में न पड़ो, परन्तु जो व्यक्ति पीड़ित मानव-समाज के उद्धार का व्रत लेकर ही धरा-धाम पर अवतीर्ण हुआ हो, जन-सेवा ही जिसका परम कर्त्तव्य और चरम लक्ष्य हो, वह भला पुलिस की विभीषिका से डरकर या प्राणों के मोह में पड़कर अपने उद्देश्य से भ्रष्ट कैसे हो सकता था!

इस घटना के दूसरे ही दिन 'जोज़ेफ़' नामक व्यक्ति ने मार्सिलीज़ के एक साधारण-से शफ़ाखाने में महामारी-पीड़ितों की सेवा के लिए स्वयंसेवकों में अपना नाम लिखाया और वह तन-मन से रोग-ग्रस्तों की सहायता-शुश्रूषा करने लगा। जन-सेवा के आगे इस युवक को न अपने खाने की फ़िक्र थी, न विश्राम की चिन्ता। उसे अगर कोई धुन थी, तो रोगि-परिचर्या की। वह रोगियों को दवा देता, पानी पिलाता, उनके मल-मूत्रादि उठाता और उन्हें अनेक प्रकार से सान्त्वना देता था। उस युवक की अधिकांश रातें बीमारों की चारपाइयों के सिरहाने बैठे-बैठे ही बीतती थीं। मृतकों को उठा कर श्मशान ले जाना और उनकी अन्त्येष्टि क्रिया करना भी जोज़ेफ़ का प्रतिदिन का कार्य था। उसका निःस्वार्थ सेवा-भाव और अनवरत अध्यवसाय देख लोग दंग थे। निश्चय ही उस समय वह उन विपद्ग्रस्तों के उद्धारार्थ अवतीर्ण हुआ देव-दूत-सा जान पड़ता था। यह युवक जिसके हृदय में मनुष्यमात्र के लिए इस प्रकार संवेदना और सहानुभूति भरी हुई थीं, और कोई नहीं, हमारा चरित-नायक वीर गेरीबाल्डी ही था।

जब तक मार्सिलीज़ में महामारी का प्रकोप रहा, गेरीबाल्डी बराबर रोगियों की सेवा-शुश्रूषा में लगा रहा। इस आपत्काल में प्रायः सभी महामारी के कारण त्रस्त और उससे त्राण पाने की चिन्ता में व्यस्त थे, इसलिए किसी पुलिस वाले या नागरिक का ध्यान गेरीबाल्डी की ओर नहीं गया। बीमारी शान्त होने पर गेरीबाल्डी फिर एकान्त वास करने लगा। परन्तु उसे वह एकान्त जीवन

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

तनक भी पसन्द न था। जिसके हृदय में जन-सेवा की लगन लगी हुई थी, जो देश-सेवा के लिए अपना सर्वस्व उत्सर्ग कर चुका था, उसे इस तरह चोरों की भाँति लुक-छिप कर हाथ पर हाथ धरे बैठे रहना भला कैसे रुचिकर हो सकता था। उसे तो लोक-सेवा में ही आनन्द प्राप्त होता था, फिर चाहे वह कहीं पर और किसी रूप में की जाय।

इसी अवसर में गेरीबाल्डी को समाचार मिला, कि दक्षिण अमरीका में भी वहाँ के निवासियों ने अन्याय-पूर्ण शासन के विरुद्ध आन्दोलन शुरू कर दिया है। फिर क्या था, गेरीबाल्डी को मुँह माँगी मुराद मिल गई। उसने उसी समय अमरीका जाकर वहाँ के जनतन्त्र आन्दोलन में योग देने का दृढ़ संकल्प कर लिया। परन्तु अमरीका पहुँचा किस तरह जाय, यह समस्या सामने आई। किसी भी जहाज़ पर विदेश-यात्रार्थ आवेदन करते समय उसका प्रकट हो जाना अनिवार्य था, और प्रकट होते ही, पुलिस द्वारा पकड़े जाने की भी निश्चित सम्भावना थी। गेरीबाल्डी बड़े असमञ्जस में पड़ा। परन्तु शीघ्र ही उसने अपनी प्रत्युत्पन्न मति से उस समस्या को भी सुलझा लिया। सच है, सच्ची लगन और पक्की धुन वालों के मार्ग में कोई भी विघ्न-बाधा सहसा रुकावट नहीं डाल पाती।

अपने निश्चयानुसार 'नॉनटिस' के बन्दरगाह में से चुपचाप एक छोटे-से जहाज़ का लंगर उठा कर गेरीबाल्डी अमरीका के लिए चल पड़ा। और मार्ग में आने वाली आपत्तियों को झेलते एवं विघ्न-बाधाओं को ठेलते हुए वह वीर अमरीका जा पहुँचा। वहाँ पहुँच कर गेरीबाल्डी क्रान्तिकारी संघों की खोज में फिरने लगा। एक दिन वह ब्रेज़िल के समुद्रतट पर किसी विचार में निमग्न खड़ा था, कि उसी समय उसे अमरीका प्रवासी बहुत-से इटालियन हथकड़ी-बेड़ियाँ द्वारा जकड़े हुए, एक जहाज़ पर से उतरते दिखाई

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

दिए। पूछने पर जब उसे विदित हुआ कि ये सब जनतन्त्र आन्दोलन में भाग लेने के कारण गिरफ्तार करके लाए गए हैं, तो उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने मन ही मन कहा—"जब इटालियन बन्धु स्वतन्त्रता के महत्त्व को समझने लगे हैं, तो विश्वास है कि अब वे निश्चय और शीघ्र ही स्वतन्त्र होकर रहेंगे।"

इस घटना के थोड़े ही दिनों बाद गेरीबाल्डी ने एक छोटे-से युद्धोपयोगी जहाज के कर्मचारियों को समझा-बुझा और बहला-फुसला कर अपने पक्षमें कर लिया तथा उस रण-पोत पर कब्जा करके उसने उसका नाम 'मात्सीनी' रक्खा। मात्सीनी जहाज को लेकर गेरीबाल्डी तुरन्त आन्दोलनकारियों में सम्मिलित हो गया। इस समय मात्सीनी जहाज पर गेरीबाल्डी से अलग केवल बारह कर्मचारी और थे, परन्तु थे सबके सब विश्वसनीय, वीर, साहसी, उत्साही और रण-कुशल। प्रजातन्त्र के अधीन होकर गेरीबाल्डी को अनेक दमनकारी दलों से मोर्चा लेना पड़ा जिनमें वह अपनी असाधारण वीरता एवं अनुपम रण-कुशलता द्वारा बराबर कृत-कार्य होता रहा।

एक बार लियोनार्डो नामक स्पेनिश योद्धा ने बहुत-सी सेना लेकर गेरीबाल्डी के 'मात्सीनी' जहाज पर अचानक आक्रमण कर दिया। पता लगते ही गेरीबाल्डी ने भी अपने साथियों को प्रत्याक्रमण की आज्ञा देदी और वह स्वयं भी शस्त्रास्त्र लेकर सन्नद्ध हो गया। ख़ूब डट कर लड़ाई हुई। एक ओर केवल इनेगिने बारह वीर और दूसरी ओर सैकड़ों सैनिक! एक प्रकार से अज और गज का मुकाबला था। फिर भी स्वतन्त्रता देवी के सच्चे उपासकों, लोकसेवा के लिए बलिदान होने वाले वीरों के आगे भाड़े के टट्टुओं की भीड़ ठहर न सकी। उसे साहस छोड़ और दम तोड़ कर भागना ही पड़ा। यद्यपि इस युद्ध में विजय गेरीबाल्डी ही की हुई, परन्तु उसका एक साथी मारा गया, तथा वह स्वयं भी शत्रुओं की गोली

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

का लक्ष्य बना।

गोली लगते ही गेरीबाल्डी पहले तो कुछ समय के लिए अचेत हो गया, परन्तु शीघ्र ही सावधान होकर पड़े ही पड़े साथियों को युद्ध के लिए प्रोत्साहित करने लगा। और अन्त में उसने शत्रुओं पर विजय पाई। शत्रुओं को भगा कर गेरीबाल्डी ने वहाँ ठहरना उचित न समझा। उसने तुरन्त अपना जहाज़ 'गोलेको' नामक स्थान की ओर बढ़ा दिया। उस समय यह वीर यद्यपि आघातजन्य ज्वर तथा गोली की विषम वेदना के कारण व्यथित और विकल था, फिर भी जहाज़ का पथ-प्रदर्शन स्वयं ही कर रहा था; क्योंकि उस जहाज़ पर उसके सिवा दूसरा कोई समुद्री मार्ग जानता ही न था। ज्यों-त्यों ये लोग उद्दिष्ट स्थान पर पहुँचे और वहाँ एक चिकित्सालय में गेरीबाल्डी की चिकित्सा का प्रबन्ध हुआ। गोली निकाल कर घाव की मरहम पट्टी की गई, और ज्वर के लिए भी दवा दी गई। चिकित्सकों की सहानुभूति-पूर्ण सहायता और साथियों की सेवा-शुश्रूषा द्वारा गेरीबाल्डी शीघ्र ही स्वस्थ होगया।

'गोलेको' में गेरीबाल्डी को शारीरिक व्यथा से तो मुक्ति मिल गई, परन्तु वहाँ के अधिकारियों द्वारा उसे उसके साथियों सहित बन्दी बना लिया गया। पीछे उसको इस शर्त पर कारागार से मुक्त किया गया कि वह उस स्थान को छोड़कर दूसरी जगह न जायगा। परन्तु जो वीर स्वदेश और स्वजाति ही क्यों, मनुष्यमात्र की स्वतन्त्रता का समर्थक था, वह भला स्वयं इस प्रकार बन्धन में कैसे रहता ? अवसर पाते ही उसने वहाँ से भाग निकलने की चेष्टा की, परन्तु मार्गादि से अपरिचित होने के कारण वह तुरन्त ही फिर पकड़ा गया। इस बार गेरीबाल्डी को भीषण से भीषण यातनाएँ देकर उससे उसके साथी षड्यन्त्रकारियों के नाम-पते पूछने का प्रयत्न किया गया, मगर वाह रे वीर ! कोड़ों की मार खाने और घण्टों बँधे लटके रहने पर भी उसने एक भी साथी का नाम नहीं बताया। एक

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

दिन तो इस परम साहसी वीर ने क्रुद्ध होकर उस अधम अधिकारी के मुँह पर थूक दिया, जिसकी आज्ञा से उसे अमानुषिक यन्त्रणाएँ दी गई थीं।

अन्त में गेरीबाल्डी एक मित्र की सहायता द्वारा वहाँ के बन्दी-गृह से निकल ही भागा। कारागार से निकल कर वह 'रायोग्राण्डी' की सीमा में जा पहुँचा और वहाँ के प्रजातन्त्र संघ की सेना में सम्मिलित हो गया।

रायोग्राण्डी के प्रजातन्त्र की ओर से भी गेरीबाल्डी ने अनेक युद्ध किये और वह उन सब में विजयी हुआ। एकबार यह वीर एक छोटे से जहाज पर यात्रा कर रहा था, कि अचानक भयङ्कर तूफ़ान आ गया। बहुत कुछ साधने-सँभालने पर भी गेरीबाल्डी की छोटी सी नाव झंझावात द्वारा विक्षुब्ध सागर की उत्ताल तरंगों के कारण छिन्न-भिन्न होकर जल-समाधि ले गई। दैवात् गेरीबाल्डी तो तैरते-तैरते "सानटा केटेरिना" नामक समुद्र-तट पर जा लगा, परन्तु उसके साथी सब बिछुड़ गये। उन्हें न जाने समुद्र की लहरों ने कहाँ का कहाँ ले जा पटका।

यहाँ पर गेरीबाल्डी का 'एनिटा' नामक एक वीर महिला से प्रेम हो गया और वह उसके साथ विवाह-बन्धन में बँध गया। विवाह हो जाने पर गेरीबाल्डी ने सार्वजनिक सेवा-क्षेत्र में विचरना छोड़ घर के घेरे ही में घूमना शुरू कर दिया हो सो नहीं, प्रत्युत अब वह दूने उत्साह और अधिकाधिक लगन से सेवा-कार्य करने लगा। गेरीबाल्डी ने एनिटा को भी सच्चे अर्थों में अपनी अर्धाङ्गिनी बना लिया था। वह भी लगभग सभी बातों में गेरीबाल्डी के-से ही विचार रखती थी। साहस, धैर्य, पराक्रम, सेवाभाव आदि सभी गुण उसमें भी प्रचुर मात्रा में विद्यमान थे। जंगल हो या पहाड़, सहरा हो या समुद्र, घर हो चाहे युद्धक्षेत्र, प्रत्येक समय और प्रत्येक स्थान में एनिटा छाया की भाँति गेरीबाल्डी के साथ ही

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

दिखाई देती थी। वह वीर वामा युद्धक्षेत्र में भी बराबर पति के साथ रह कर उसे सामयिक सहायता पहुँचाया करती। अनेक बार वह हाथ में तलवार लेकर युद्ध-देवी की भाँति समर-क्षेत्र में अवतीर्ण हुई और उसने अपने बाहुबल एवं रणकौशल की धाक शत्रुओं पर जमादी।

एक बार दुर्भाग्यवश गेरीबाल्डी की सेना को एक युद्ध से भागना पड़ा। संयोगवश एनिटा उस समय शत्रुओं के बीच घिर गई, परन्तु अकेली रह जाने पर भी उसने हिम्मत नहीं हारी। वह बराबर युद्ध करती रही और जब तक शत्रुओं के प्रहारों से क्षत-विक्षत होकर उसका घोड़ा गिर नहीं गया, उस वीर महिला ने आत्मसमर्पण नहीं किया। वैरियों द्वारा बन्दीगृह में बन्द कर दिये जाने पर भी एनिटा हताश नहीं हुई, प्रत्युत बराबर शत्रुओं के चंगुल से निकल भागने की युक्ति सोचती रही। और अन्त में एक दिन थोड़ा अवसर मिलते ही अपने पति के उस लबादे द्वारा वेश बदल कर निकल भागी, जो संयोग से उसे समर-भूमि में पड़ा मिल गया था और वह उसे उठा लाई थी। आखिर शत्रुओं की क़ैद से निकल भागने में पति का लबादा ही एनिटा का सहायक हुआ।

एनिटा अपने पति का पता लगाती हुई बिना कुछ खाये-पिये और बिना विश्राम किये लगातार भागी चली जा रही थी। चार दिन निरन्तर दौड़ने-धूपने के बाद पाँचवे दिन एनिटा की एक सहृदय समाज-सेवक सज्जन से भेंट हो गई, जिसने उसे खाना खिलाया और विश्राम कराया। चलते समय उस व्यक्ति ने एनिटा को एक घोड़ा भी दे दिया, जिस पर सवार होकर वह गेरीबाल्डी की खोज में आगे चली। मार्ग में अनेक दुर्गम्य वन-पर्वतों और दुर्लंघ्य नदी-नालों को पार करती हुई वह पति-परायण देवी नवें दिन जाकर पति से मिली।

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

इसी भाँति एक और लड़ाई में भी गेरीबाल्डी की सेना को भागना पड़ा था। उस समय इस दम्पति ने जो-जो विषम विपत्तियाँ झेलीं उनका वर्णन सुनकर भी हृदय काँप जाता है। उन दिनों एनिटा अकेली न थी, प्रत्युत उसकी गोद में उसका नवजात शिशु 'मेनोटी' भी था। इस बार इस वीर महिला को अपने दुध-मुँहे बालक को गोद में लिये पति के साथ-साथ तीन मास वन-पर्वतों में बिताने पड़े थे। इस वनवास में गेरीबाल्डी ने शीतकाल की अनेक रातें, अपने हृदय के टुकड़े प्राण-प्रिय पुत्र को छाती से चिपकाये, पेड़ों के नीचे भीगते-भीगते काटी थीं। जंगल में इस दम्पति को कन्द-मूल-फल खाना और कभी-कभी निराहार ही रह जाना पड़ता था। जब कभी इन्हें किसी गहरी नदी के उस पार जाना होता, तो गेरीबाल्डी अपने पुत्र को कपड़े में बाँध कर गले में लटका लेता तथा एक हाथ से एनिटा को सहारा देते हुए तैर कर नदी पार करता।

इस प्रकार प्रजातन्त्र संघ की अधीनता में गेरीबाल्डी ने भयंकर से भयंकर कष्ट सहकर भी अनेक शत्रुओं को परास्त किया। केवल दो बार को छोड़कर जब-जब भी वह युद्ध में सम्मिलित हुआ वहाँ से विजय-वैजयन्ती फहराता हुआ ही लौटा। परिमित समर-सामग्री और अल्प संख्यक सैनिकों की सहायता से ही इसने सैकड़ों लड़ाइयाँ जीतीं, दसियों क़िले तोड़े और अनेकों युद्ध-पोत नष्ट-भ्रष्ट किये। परन्तु गेरीबाल्डी ने उच्च अधिकारियों द्वारा आज्ञा दी जाने पर भी न तो कभी निःशस्त्र और निःस्सहाय शत्रु-सैनिकों या प्रजाजनों पर आक्रमण किया और न शत्रुओं के किसी ग्राम या नगर को लूटा-खसोटा। अधिकारियों के आदेश से जब दूसरे सैनिक गाँवों में लूट-मार मचाते और उनमें आग लगा देते; उस समय गेरीबाल्डी को ऐसी असह्य वेदना होती, मानो वह आग उसके शरीर ही में लगाई गई

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

हो। इस अमानुषिक कृत्य को देखकर गेरीबाल्डी का हृदय काँप उठता था।

अनेक बार गेरीबाल्डी ने अधिकारियों से इस प्रकार निरीह प्रजा पर अत्याचार करने से विरत रहने की प्रार्थना की, बहुत बार उनका विरोध भी किया, परन्तु जब उनका यह अन्याय रुकने की जगह और भी बढ़ने लगा, तो विवश होकर उसने उनका साथ छोड़ दिया। कहावत है—"सागर में रहकर मगर से वैर उचित नहीं होता"। जब गेरीबाल्डी का वहाँ के अधिकारियों से मन-मुटाव-सा होगया तो उसने वहाँ रहना भी उचित न समझा, और वह 'माण्टी वीडियो' की ओर चल दिया।

गेरीबाल्डी के कुछ पास-पल्ले तो रहता ही न था। उसने एक दिन की आवश्यकता से अधिक पैसा या अन्य सामग्री का संचय कभी नहीं किया। गेरीबाल्डी की निस्पृहता का परिचय उसकी आगे की जीवनी से भली भाँति मिलता है। हाँ, तो गेरीबाल्डी के पास कौड़ी-पैसा कुछ भी न था, जिससे वह मार्ग में खान-पान की आवश्यकताएँ पूरी करता। साथ ही दूसरों की दी गई सहायता उसे स्वीकार न थी। उसका कहना था कि "Bread of charity has always seemed bitter to me" (दान के टुकड़े मुझे सदैव कड़वे लगते हैं)। आखिर गेरीबाल्डी को यात्रा भी करनी होती और खाने-पीने की ज़रूरत पूरी करने के लिए महनत-मजदूरी भी। ज्यों-त्यों वह वीर माण्टी वीडियो पहुँचा और वहाँ जहाज़ों पर दलाली करके जीवन-निर्वाह करने लगा। कुछ दिनों बाद उसे एक जहाज़ पर कप्तान का पद मिल गया।

कप्तान-पद पर रहते गेरीबाल्डी का मुख्य काम—लोक-सेवा—कुछ न हो पाता था, अतः उसने त्याग-पत्र देकर उससे पीछा छुड़ाया और अब वह अमेरिका-स्थित इटालियनों को संगठित कर उन्हें एक सेना का रूप देने में जुट पड़ा। इस सेना का झंडा

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

ज्वालामुखी पर्वत के चित्र से चित्रित काले रंग का रक्खा, जिसका अभिप्राय था, कि पराधीनता-पाश में जकड़ा हुआ इटली शोक मना रहा है, और उसके हृदय में देश-प्रेम की ज्वाला धधक रही है। स्वयं गेरीबाल्डी ही इस सेना का अध्यक्ष था। आरम्भ में तो यह सैन्य संगठन कोरा भानुमती का कुनबा ही था, परन्तु गेरीबाल्डी ने अपने उदार चरित एवं विमल व्यक्तित्व से प्रभावित कर उन सब को एकता-सूत्र में बाँध एक शिक्षित और संगठित सेना बना दी।

गेरीबाल्डी के सैनिकों पर उसके अनुशासन का उतना प्रभाव नहीं पड़ता था, जितना कि भ्रातृभाव-पूर्ण उदार व्यवहार का होता था। वह युद्ध में घायल हुए वीरों की सेवा-शुश्रूषा बड़ी लगन से करता था। भयंकर गोली-वर्षा में घुस कर भी गेरीबाल्डी अपने घायल वीरों को गोद में उठाकर लाता और उन्हें सुरक्षित स्थान पर पहुँचाता। यही कारण था कि उसके सिपाही भी, जहाँ गेरीबाल्डी का पसीना गिरता वहाँ अपना रुधिर बहाने को तैयार रहते थे। यद्यपि इस सेना द्वारा इस समय इटली का कोई लाभ न होरहा था, परन्तु गेरीबाल्डी ने इसका संगठन इस उद्देश्य से किया था, कि इस तरह इटालियन लोग संगठन-सूत्र में आवद्ध रहना और देश-जाति के लिए बलिदान होना तो सीखेंगे। पीछे इसी सेना को लेकर मैं अपनी मातृ-भूमि का भी उद्धार करूँगा।

इस सेना द्वारा गेरीबाल्डी ने माण्टी वीडियो के प्रजातन्त्र की उल्लेखनीय सेवाएँ कीं, जिनसे प्रसन्न होकर संघ के युद्ध-मन्त्री ने गेरीबाल्डी को पुरस्कार स्वरूप प्रचुर धनराशि के साथ-साथ उसे 'प्रधान सेनापति' की उपाधि भी प्रदान की। परन्तु गेरीबाल्डी ने उपाधि और पुरस्कार दोनों ही लेने से इनकार कर दिया। उपाधि अस्वीकार करते हुए उसने समर-मन्त्री को लिखा था—"इटली माता के इतने लाड़ले पुत्रों का रुधिर देकर, बदले में मुझे प्रतिष्ठा या उपाधि प्राप्त नहीं करनी। मैंने जो अपने देश-बान्धवों को एक

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

ऐसी जाति के उद्धारार्थ रुधिर बहाने के लिए उत्साहित किया, जो अत्याचारियों के अत्याचार-भार से पिसी जा रही थी, वह इस लिए नहीं, कि मैं किसी पद या पुरस्कार का भूखा था। यह सब कुछ मैंने केवल विपद्-ग्रस्तों के प्रति सहानुभूति से प्रेरित होकर ही किया है।" गेरीबाल्डी ने उक्त पत्र के साथ समर-मन्त्री द्वारा प्रदत्त प्रधान सेनापति की उपाधि तो वापस कर दी और पुरस्कार स्वरूप जो धन आया था, वह अपने घायल और रोगी सैनिकों में बाँट दिया।

हम पहले लिख चुके हैं, गेरीबाल्डी अपने लिये कभी धन-संग्रह न करता था। यदि कभी उसके पास कोई इकट्ठी रक़म कहीं से आ भी जाती, तो वह उसे इसी प्रकार अपने अधीनस्थ लोगों में बाँट देता। वह अपने साथियों से अधिक सुख-सुविधा की कोई सामग्री अपने पास न रखता था। उसके घर में सदा नोन-तेल-लकड़ी की चिन्ता बनी रहती थी। बताया जाता है कि, जिस समय उसके दूसरे पुत्र 'रिकिओटी मिनोटी' का जन्म हुआ, उस वक्त उसके घर में थोड़ी-सी सूखी मटर के सिवा और कुछ न था। जब डाक्टर प्रसव क्रिया कराने आया और उसने गेरीबाल्डी का घर इस प्रकार सामग्री-शून्य पाया तो लोगों से इस बात की चर्चा की। गेरीबाल्डी के कुछ घनिष्ठ मित्रों को इसका पता चला तब उन्होंने जच्चा-बच्चा के लिये खाने-पीने की सामग्री भिजवाई और उससे उनकी प्राण-रक्षा हुई। इसी प्रकार इस सन्तोषी दम्पति ने न जाने कितने दिन निराहार बिता दिये और किसी को कानों-कान ख़बर न होने दी।

माण्टी वीडियो में गेरीबाल्डी के गुणों की ख्याति घर-घर फैल गई। उसकी उदारता, दयालुता, निस्पृहता और वीरता आदि गुणों पर मुग्ध अनेक लोग उसके दर्शनार्थ आने लगे। सर्वत्र गेरीबाल्डी को आदर की दृष्टि से देखा जाता था, सभी उसकी

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

प्रतिष्ठा करते थे। एक दिन फ्रांसीसी फ़ौज का एडमिरल, इटालियन सेना के अध्यक्ष गेरीबाल्डी से मिलने आया। फ्रांसीसी नौ-सेनाध्यक्ष समझता था, कि जिस गेरीबाल्डी का माएटी वीडियो में इतना आदर है, जो ऐसी प्रशंसा-प्राप्त वीर-वाहिनी का नायक है, वह न जाने कितने ठाट-बाट और कैसी शान-शौकत से रहता होगा। परन्तु वहाँ आकर उसने जो देखा उससे वह अचम्भे में रह गया। फ्रांसीसी एडमिरल को बड़ी देर की पूछ-गछ के बाद तो गेरीबाल्डी का झोंपड़ा मिला। उसके भी न द्वार में किवाड़ और न अन्दर रोशनी! एक टूटी-सी टटिया द्वार से अड़काये गेरीबाल्डी अपने पत्नी-पुत्रों सहित उसके भीतर बैठा था। एडमिरल ने टटिया को ज़रा हिलाया कि वह एक ओर जा पड़ी, साथ ही अँधेरे के कारण, समीप रक्खी एक टूटी कुर्सी से टकरा कर वह स्वयं भी गिरते-गिरते बचा।

इसके अनन्तर एडमिरल ने गेरीबाल्डी को आवाज़ दी। आवाज़ सुनकर गेरीबाल्डी एनिटा से बोला—"देखो एनिटा, एक अतिथि आये हैं, यदि कुछ हो तो उसे जला कर कम से कम घर में थोड़ा प्रकाश तो करलो।"

उत्तर में एनिटा ने कहा—"क्या जला लूँ? आप क्या जानते नहीं, घर में न लेम्प है न मोमबत्ती! पास में एक पैसा भी नहीं कि बाज़ार से ही एक मोमबत्ती मँगाली जाय।"

आख़िर अन्धकार में ही थोड़ी देर बैठ और बातचीत करके एडमिरल वापस चला गया। उसने प्रजातन्त्र के समर-मन्त्री से जाकर गेरीबाल्डी की आर्थिक दुरवस्था का हाल कहा, जिसे सुन कर मन्त्री ने सौ पेटेगोन्स (उस समय का सिक्का) गेरीबाल्डी के पास भिजवा दिए। मगर वाह रे गेरीबाल्डी! उस त्याग-मूर्ति ने उनमें से केवल एक पौंड मोमबत्ती का मूल्य अपने पास रख कर शेष समस्त धन समर में वीरगति प्राप्त अपने अधीनस्थ सिपाहियों के पारिवारिकों में बाँट दिया। वह एक पौंड मोमबत्तियों

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

का मूल्य भी उसने एडमिरल के समान अवेरे-सवेरे आने वाले अतिथियों की सुविधा के लिए रख छोड़ा था; अपने काम में उसमें से एक पैसा भी नहीं लगाया।

इस प्रकार गेरीबाल्डी बारह वर्ष अमेरिका में रहा, परन्तु वहाँ रहते-सहते भी वह अपनी मातृ-भूमि को एक क्षण के लिए नहीं भूला। वह मजबूरन अपने विपत्ति के दिन अमरीका में विता रहा था, परन्तु अत्याचार-पीड़ित इटालियन बन्धुओं की याद उसे प्रतिक्षण बनी रहती थी। मातृभूमि के दर्शनों की लालसा और उसके उद्धार की कामना उसके हृदय में बराबर उथल-पुथल मचाये रहती। अब उसकी ये इच्छाएँ अत्यन्त प्रबल हो उठी थीं और वह शीघ्र से शीघ्र स्वदेश पहुँच कर जन्मभूमि के उद्धार-कार्य में लगना चाहता था। इसी समय उसे सूचना मिली कि 'इटली की प्रजा ने पुराने पोप को हटाकर 'पायस नवम' को नया पोप निर्वाचित कर लिया है। पायस नवम ने भी देशवासियों को बहुत कुछ सुधार की आशा दिलाई है। आशा होती है इसके द्वारा इटली में अच्छे शासन की नींव पड़ेगी।'

उपर्युक्त शुभ समाचार पाकर गेरीबाल्डी को कल्पनातीत प्रसन्नता हुई। उसने समझा, इटली के भाग्य पलटे। अब शीघ्र ही वहाँ कुशासन की काली घटाओं को छिन्न-भिन्न करके सुशासन का सूर्य चमकेगा। बस गेरीबाल्डी ने उसी समय स्वदेश लौटने का विचार निश्चित कर लिया। अपनी पत्नी एनिटा को तो, दोनों पुत्रों सहित उसने बहुत शीघ्र ही घर के लिये रवाना कर दिया, क्योंकि उनके लिये वहाँ कोई प्रतिबन्ध नहीं था। अब वह अपने जाने के लिये युक्ति सोचने लगा। बहुत कुछ सोच-विचार कर उसने माण्टी वीडियो-स्थित पोप के प्रतिनिधि को पत्र लिखा, कि मैं अपने समस्त दल-बल सहित आपकी सेना में सम्मिलित होकर आपके और आस्ट्रिया के मध्य छिड़े हुए युद्ध में आपकी सेवा करना चाहता हूँ।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पोप-प्रतिनिधि से आश्वासन पाकर गेरीबाल्डी ने अपने मँजे मँजाये वीरों को साथ ले इटली के लिए प्रस्थान कर दिया। इस समय गेरीबाल्डी के आशापूर्ण हृदय में आनन्द की हिलोरें उठ रही थीं। वह मातृभूमि-दर्शन की धुन में उल्लसित हृदय से देश-भक्ति के गाने गाता इटली की ओर चला जा रहा था। परन्तु मार्ग ही में उसे सूचना मिली कि 'पोप ने प्रजाजनों को जो सुधार देने का वचन दिया था, उससे वह पलट गया है।' इस दुखद समाचार से गेरीबाल्डी को बड़ी निराशा हुई। उसने जो-जो मनसूबे बाँध रक्खे थे; उन सब पर पानी फिर गया। अब क्या करे? आगे बढ़े या पीछे लौट जाय, वह कुछ भी निश्चय नहीं कर पाता था। इतने ही में उसे एक दूसरा समाचार प्राप्त हुआ कि, 'सेवाय के अधिपति चार्ल्स एल्बर्ट ने प्रजातन्त्र की घोषणा कर दी है तथा भविष्य में उससे राष्ट्र को और भी बहुत कुछ आशा है।' इस ख़बर को पाकर गेरीबाल्डी का कुम्हलाया हुआ हृदय-कमल पुनः विकसित हो उठा। उसके साथियों की भी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। सब मारे हर्ष के एकदम उछल पड़े। फिर क्या था, गेरीबाल्डी ने उसी क्षण अपने जहाज़ पर से माण्टी वीडियो की पताका उतार कर उसकी जगह इटालियन राष्ट्र का तिरंगा झंडा फहरा दिया।

जिस समय गेरीबाल्डी का जहाज नाइस नगर में पहुँचा, उस समय उसे देखने के लिये दर्शकों की भीड़ लग गई। गेरीबाल्डी के आगमन की सूचना पाकर उसके बन्धु-बान्धव ही नहीं प्रत्युत आधे नगर के लोग बन्दरगाह पर एकत्र हो गये। बारह वर्ष से बिछुड़े हुए अपने गेरीबाल्डी को पुनः पाकर लोगों को अपार आनन्द अनुभव हुआ। उधर गेरीबाल्डी को भी अपनी जननी और जन्म-भूमि के दर्शन कर जो प्रसन्नता हुई, उसे वही जानता था।

जिन दिनों गेरीबाल्डी इटली पहुँचा, उन दिनों वहाँ सार्डीनिया

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

और आस्ट्रिया में युद्ध छिड़ा हुआ था। गेरीबाल्डी ने सार्डीनिया का पक्ष लेकर आस्ट्रियनों से लड़ने की इच्छा प्रकट की, परन्तु अहंकारवश सार्डीनिया-नरेश ने उसे अपनी सेना में सम्मिलित नहीं किया; कारण कि कुछ वर्ष पहले वह गेरीबाल्डी को प्राण-दण्ड की आज्ञा दे चुका था। अन्त में गेरीबाल्डी मीलान पहुँचा और वहाँ प्रजातन्त्र सरकार की सेना में सम्मिलित होकर युद्ध-क्षेत्र में अवतीर्ण हुआ।

गेरीबाल्डी युद्ध-भूमि में पहुँचा ही था कि इधर सार्डीनिया ने मीलान नगर शत्रुओं को देकर उनसे सन्धि कर ली। गेरीबाल्डी को सार्डीनिया का यह काम बहुत नापसन्द आया! उसने उसी समय घोषणा कर दी कि 'सार्डीनिया-नरेश ने शत्रु से समझौता करके देश के साथ विश्वासघात किया है, अब प्रजातन्त्र सरकार की ओर से युद्ध किया जायगा।'

गेरीबाल्डी की सिंह-गर्जना सुनकर महात्मा मात्सीनी भी उसके दल में आ मिला। और भी अनेकों देश-प्रेम के दीवाने आ-आकर उसकी सेना में सम्मिलित होने लगे। थोड़े ही समय में गेरीबाल्डी के सैनिकों की संख्या एक सहस्र तक पहुँच गई। फिर क्या था, डट कर युद्ध हुआ। गेरीबाल्डी की सेना बड़ी वीरता के साथ शत्रुओं के साथ लड़ी। अनेक बार उसने दुश्मनों के छक्के छुड़ाये। परन्तु शत्रुओं की जितनी क्षति होती, उससे कहीं अधिक सहायता उनके लिये आ जाती थी। अन्त में बहुसंख्यक आस्ट्रियन सेना ने गेरीबाल्डी की परिमित पलटन के पैर उखाड़ ही दिये।

अपनी सेना तितर-बितर हो जाने के पश्चात् गेरीबाल्डी जिनोआ पहुँचा। वहाँ उसने कुछ लोगों को एकत्र कर फिर एक छोटा सा दल बनाया। इस दल को लेकर वह बड़ी कठिनाइयों

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

से रेवेना पहुँचा। गेरी वाल्डी चाहता था कि रेवेना से कुछ सैनिक और संगठित करके वह 'नाइस' जाय और वहाँ आन्दोलन प्रारम्भ करे। परन्तु इसी बीच में किसी रोम नवासी ने पोपों के प्रधान मन्त्री रौसी की हत्या कर डाली। रौसी के मारे जाने से पोपों में खलबली मच गई, उनकी हिम्मत टूट गई और उनका प्रधान, 'पायस नवम' भी चुपके से गद्दी छोड़ कर निकल भागा। पोपों की शक्ति छिन्न-भिन्न होते देख, गेरीवाल्डी ने उसमें एक और ज़ोर का धक्का लगाने के विचार से अपने दल-बल सहित रोम की ओर प्रस्थान कर दिया। वहाँ पहुँच कर उसने पोपों की रही-सही सत्ता को भी नष्ट कर डाला और एक एसेम्बली बना कर प्रजातन्त्र शासन स्थापित कर दिया।

रोम में प्रजातन्त्र शासन स्थापित होने के कुछ ही दिनों पश्चात् फ़्रांस ने भगोड़े पोपों को बहला-फुसला कर अपना समर्थक बना लिया, और उनकी सहायता के बहाने नेपोलियन बहुत सी सेना लेकर रोमीय प्रजातन्त्र सरकार से लड़ने चल पड़ा। गेरीवाल्डी को जब फ़्रांस के इस षडयन्त्र का पता चला तो उसने रोम की जनता के समक्ष उसका भंडा फोड़ कर, उसे नेपोलियन से लड़ने को सन्नद्ध किया। बात की बात में गेरीवाल्डी की अधीनता में रोमीय प्रजा नेपोलियन के आगे डट गई और अन्त में उसने फ़्रांसीसी सेना को गर्दनियाँ देकर रोम से बाहर निकाल दिया। जब फ़्रांसीसी सेना युद्धक्षेत्र से भाग रही थी, तब गेरीवाल्डी की इच्छा उसे और भी खदेड़ कर इटली से बाहर कर देने की थी। उस समय यह कार्य कुछ कठिन भी न था, क्योंकि फ़्रांसीसियों की हिम्मत टूट गई थी, और इधर रोमीय सैनिकों के हौसले बढ़े हुए थे। परन्तु रोमीय शासन ने उसे ऐसा करने की आज्ञा नहीं दी। इतिहास-लेखकों का मत है, कि यदि उस समय गेरी-वाल्डी को युद्ध के सर्वाधिकार सौंपे हुए होते, तो वह रोम की इस

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

विजय को पूर्ण एवं स्थायी विजय बनाकर प्रजातन्त्र शासन की जड़ें पाताल तक पहुँचा देता। अस्तु,

अन्त में फ्रांसीसी सेना ने दुबारा, संगठित और प्रचुर समर-सामग्री से सुसज्जित हो, बड़े समारोह के साथ रोम पर आक्रमण किया। इस भयङ्कर युद्ध में रोमीय सैन्य के सभी चुने-चुने रत्न काम आगये और उनकी पराजय के चिन्ह स्पष्ट दिखाई देने लगे। स्थिति पलटी देख रोम की सर्वोच्च सत्ता ने फ्रांस वालों की अधीनता स्वीकार कर ली। यह सन्धि भी गेरीवाल्डी तथा रोमीय सेना की इच्छा के विरुद्ध की गई थी, इसलिए गेरीवाल्डी ने उसी समय रोमीय शासन से अपना सम्बन्ध हटा लिया।

इसके पश्चात् वीर गेरीवाल्डी ने अपना संगठन अलग बनाया। उसने अपने सैनिकों को बतलाया कि अब हमें रोम को छोड़कर इटली के दूसरे-दूसरे प्रान्तों पर आक्रमण करना होगा। साथ ही उसने अपने साथियों को यह भी सुझा दिया कि "हम लोग बड़ा भारी ख़तरा अपने ऊपर ले रहे हैं। इसमें हमें सिर हथेली पर रखकर जी तोड़ परिश्रम करना पड़ेगा। आप लोगों को मैं वेतन दे सकूँगा यह आशा आप छोड़ दें। मेरे साथ तो भोजन भी तब मिलेगा, जब ईश्वर देगा। अगर आप लोगों के हृदय देश-प्रेम से परिपूर्ण हैं, अगर आप में मातृ-भूमि को बन्धन-मुक्त करने की सच्ची लगन है, तो आप मेरे साथ क़दम बढ़ाएँ अन्यथा अपने घर का रास्ता लें।" गेरीवाल्डी के यह स्पष्ट घोषणा करने पर भी पाँच हजार देश-प्रेम के दीवाने उसके तिरंगे झंडे तले एकत्र होगए।

इस प्रकार पाँच हजार देश-भक्त वीरों की सेना लेकर गेरीवाल्डी रोम नगर से चल पड़ा। जैसे ही इधर गेरीवाल्डी की फ़ौज आगे बढ़ी, वैसे ही फ्रांसीसी सेना ने उसका पीछा करना शुरू कर दिया। अनेक बार दुश्मनों से मोरचा लेते, उनसे लड़ते-झगड़ते गेरीवाल्डी 'सान मेरीनो' के प्रजातन्त्र में पहुँचा। यहाँ

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

तक पहुँचते-पहुँचते उसके तीन चौथाई वीर काम आ चुके थे। सान मेरीनो वालों ने गेरीबाल्डी का खूब स्वागत-सत्कार किया। इसी समय वहाँ के प्रजातन्त्र को आस्ट्रिया की ओर से धमकी-भरा पत्र मिला कि गेरीबाल्डी को शरण दोगे, तो तुम पर आक्रमण किया जायगा। उधर गेरीबाल्डी को भी उसने लिखा कि यदि तुम आस्ट्रिया की अधीनता स्वीकार कर लो तो तुम्हें क्षमा प्रदान करके तुम्हारे अमरीका जाने का प्रबन्ध किया जा सकता है।

गेरीबाल्डी ने आस्ट्रिया का उक्त पत्र आस्ट्रियन दूत के सामने ही फाड़कर फेंकते हुए उसके द्वारा कहला भेजा कि मुझे तुम्हारी शर्तें स्वीकार नहीं हैं। इसके अनन्तर उस वीर ने अपने साथियों एवं सान मेरीना प्रजातन्त्र के अधिकारियों से कहा—"मैं नहीं चाहता कि मेरे कारण आप लोगों पर कोई संकट आवे, इसलिए मैं यहाँ से चला जाऊँगा। आप लोगों में से जिनकी इच्छा हो, वे अपने घर लौट जायँ और जिनकी इच्छा हो मेरे साथ रहें।" यह सुनकर केवल दो सौ वीर गेरीबाल्डी के साथ चलने को तैयार हुए, जिन्हें लेकर वह समुद्र-तट पर पहुँचा। एनिटा इन दिनों बीमार थी, फिर भी उसने अपने पति का साथ न छोड़ा। यह दल समुद्र-तट से तेरह नावें लेकर वेनिस जाने के इरादे से चल पड़ा। मार्ग में एक दिन रात के समय आस्ट्रियन जहाज़ी बेड़े से इनकी मुठभेड़ होगई। आमना-सामना होते ही युद्ध शुरू हो गया। इस संघर्ष में गेरी-बाल्डी की कुछ नावें शत्रुओं के हाथ पड़ गईं और कुछ डुबा दी गईं। केवल चार नावें लेकर गेरीबाल्डी दुश्मनों के चंगुल से भाग निकला और रेवेना नामक स्थान पर जा उतरा। यह स्थान भी आस्ट्रियावालों के ही अधिकार में था, इसलिये यहाँ गेरीबाल्डी को और भी अधिक संकटों का सामना करना पड़ा। अन्त में गेरीबाल्डी ने अवशिष्ट साथियों को भी अपने-अपने घर चले जाने

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

की आज्ञा दे दी, और बीमार एनिटा को लेकर वह अकेला ही यहाँ से आगे बढ़ा।

शत्रु अब भी गेरीवाल्डी का पीछा कर रहे थे, और वह अपनी बीमार पत्नी सहित वन-पर्वतों में छिपता फिर रहा था। लामान ड्रियोला नामक गाँव-निवासियों ने जब गेरीवाल्डी को इस प्रकार विपन्नावस्था में देखा तो उन्होंने उसे अपने यहाँ शरण दी। इसी ग्राम में वीर महिला एनिटा अपने पति गेरीवाल्डी की गोद में पड़े-पड़े स्वर्ग सिधारी। एनिटा जैसी वीर पत्नी के वियोग से गेरीवाल्डी को बड़ा सदमा पहुँचा। उसके आगे यदि जन्मभूमि की स्वतन्त्रता का प्रोग्राम न होता, तो निश्चय था कि एनिटा के साथ ही वह भी स्वर्गारोहण कर चुका होता। परन्तु वाह रे मातृभूमि की आज़ादी के मतवाले! एनिटा को पृथ्वी माता की गोद में सुलाकर गेरीवाल्डी तुरन्त आगे चल पड़ा। वह महीनों वन-पर्वतों में छिपता हुआ घूमता रहा, पर अन्त में चियावेरी नामक स्थान में एक आस्ट्रियन अफ़सर द्वारा पकड़ा ही गया। वहाँ से बन्दी बनाकर गेरीवाल्डी जिनोआ लाया गया, जहाँ उसे कारागार में बन्द कर दिया। गेरीवाल्डी के क़ैद होने की ख़बर पाकर इटली की जनता क्रोध से विक्षुब्ध हो उठी और उसने सहस्रों की संख्या में एकत्र होकर उस कारागार का घेरा डाल दिया जहाँ वह नर-केसरी बन्द था। जब अधिकारियों ने लोकमत को इस प्रकार गेरीवाल्डी के पक्ष और अपने विरोध में देखा तो उन्होंने गेरीवाल्डी को छोड़ दिया।

कारागार से मुक्त हो गेरीवाल्डी नाइस पहुँचा। वहाँ वह वृद्धा माता और अबोध बालकों से मिल-भेंट कर तुरन्त ही फिर चल दिया। आह! वह दृश्य कितना करुणाजनक रहा होगा, जब इतने दिनों बाद अनेक संकट सह कर और एनिटा जैसी पत्नी को खोकर गेरीवाल्डी घर आया था, तथा कुछ ही मिनटों बाद फिर अनिश्चित काल के लिए स्वजनों से वियुक्त हो गया।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

घर से चलकर गेरीवाल्डी अनेक स्थानों में घूमता फिरता फिर अमरीका पहुँचा, और वहीं पर उसने एक मोमबत्ती के कारखाने में नौकरी करके तीन वर्ष बिताये। यह जीवन गेरीवाल्डी को तनक भी पसन्द न था। इस बीच में उसका स्वास्थ्य भी बहुत खराब होगया। अन्त को वह नौकरी छोड़ लाइमा चला गया, जहाँ उसे जहाज़ की कप्तानगीरी मिल गई। इसी नौकरी के सिलसिले में गेरीवाल्डी लन्दन गया, जहाँ टाइन नदी-तट के निवासियों ने इसका बड़ा स्वागत किया। वहाँ के श्रमजीवियों ने एक-एक आना चन्दा करके एक दूरवीन तथा एक मीनाकारी की मूठ-मण्डित तलवार ख़रीद कर गेरीबाल्डी को भेंट की। इस सम्मान-प्रदान-समारोह के समय उक्त भेंट स्वीकार करते हुए गेरीवाल्डी ने कहा था—"मेरे हृदय में जिसके लिए सबसे अधिक प्रेम है, उसी जननी जन्म-भूमि के निमित्त यह तलवार लेकर मैं युद्ध करूँगा।"

लन्दन से चलकर गेरीवाल्डी जिनोआ पहुँचा और वहाँ से नाइस गया। पाँच वर्ष पश्चात् लौटने पर इस बार केवल उसे अपने बच्चों को ही देखने का अवसर मिला। कारण कि उसकी मा उसके आने से कुछ ही दिनों पूर्व स्वर्ग सिधार चुकी थी। अब गेरीवाल्डी ने नाइस छोड़ कर 'केपरार' नामक टापू में रहना शुरू कर दिया और १८५९ ई० तक वह वहीं पर खेती-बारी करके निर्वाह करता रहा।

१८५९ ई० में फ्रांस-नरेश लुई नेपोलियन फिर आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध-क्षेत्र में उतरा। इस समय गेरीवाल्डी ने भी अपनी थोड़ी सी सेना—जिसे लोग 'एलप्स पहाड़ी का शिकारी-दल' कह कर पुकारते थे—लेकर युद्ध में पीडमांट का साथ दिया। इस युद्ध में उसने आशातीत सफलता प्राप्त की। इन देश-प्रेम के दीवानों ने शत्रुओं की विशाल-वाहिनी का मुँह मोड़ दिया। परन्तु अधिकारियों की कुछ राजनैतिक चालबाजियों से इटली जीती हुई बाजी हार

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

गया तथा उसने नाइस नगर फ्रांसीसियों को देकर उनसे समझौता कर लिया। गेरीबाल्डी ने प्रजा के प्रतिनिधि की हैसियत से पार्लियामेण्ट तक में इस कार्य का घोर विरोध किया, पर उसकी एक भी न चली।

१८६० ई० में गेरीबाल्डी ने कुछ समर-सामग्री और लगभग एक सहस्र योद्धा लेकर सिसली पर आक्रमण करने के लिये जिनोआ से प्रस्थान किया। इस समय निजी जहाज़ न होने के कारण उसने फ्रांस के दो जहाज चुरा कर अपने कब्ज़े में किये और उन्हीं पर यात्रा की। वह जैसे ही सिसली के टापू 'मारसाला' में पहुँचा तैसे ही अपने चोरी गये जहाज़ों की खोज में निकले फ्रांसीसी जहाज़ों ने उसे देख लिया। वे जब तक उनके समीप पहुँचे, तब तक गेरीबाल्डी अपने समस्त सैनिकों को जहाज़ों में से उतार कर नौ-दो ग्यारह होगया। टापू में घुसते ही गेरीबाल्डी ने युद्ध की घोषणा कर दी। लोकमत तो वहाँ का उसके अनुकूल था ही, बस उसकी विजय पर विजय होने लगी। ज्यों-ज्यों गेरीबाल्डी आगे बढ़ता गया, त्यों ही त्यों लोग आ-आकर उसकी सेना में सम्मिलित होते गये। यहाँ तक कि उसके सैनिकों की संख्या बारह हज़ार तक पहुँच गई। कुछ ही दिनों में गेरीबाल्डी ने समस्त टापू जीत कर उस पर तिरंगा झंडा फहरा दिया। यहाँ की जनता ने गेरीबाल्डी को ही अपना डिक्टेटर चुना। उसने भी राष्ट्रभक्त नरेश विक्टर इमानुएल के प्रतिनिधि की हैसियत से डिक्टेटर का पद स्वीकार कर लिया।

इसके पश्चात् मेसीना की जलप्रणाली (Strait) पार करके गेरीबाल्डी आगे बढ़ा। उसके वीरों ने वहाँ पड़ी हुई फ्रांसीसी सेना को हथियारों का प्रयोग किये बिना ही खदेड़ दिया। इसके बाद गेरीबाल्डी ने नेपिल्स नगर में जाकर विश्राम किया। अब वह नेपिल्स का भी प्रधान अधिकारी था। वहाँ का शासना-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

धिकार हाथ में लेते ही गेरीबाल्डी ने राजबन्दियों को मुक्त कर दिया, तथा और भी अनेक प्रजा-हित के काम किये। खाद्य पदार्थों के दाम घटा दिये और प्रेस तथा पत्रों को पूरी स्वतन्त्रता दे दी। वहाँ की जनता गेरीबाल्डी को अपने शासक के रूप में देख हर्ष से फूली नहीं समाती थी, लोग प्रसन्नतापूर्वक "वीर गेरीबाल्डी की जय" के नारे लगा रहे थे। नगर में दो दिन तक .खुशियाँ मनाई गईं। कुछ दिनों पश्चात् गेरीबाल्डी ने डिक्टेटर-पद परित्याग कर शासन के समस्त अधिकार विक्टर इमानुएल को समर्पित कर दिये और उसे ही 'इटली का राजा' घोषित किया। दो राज्यों को जीतकर फिर उन्हें एक साधारण चीज की तरह विक्टर इमानुएल को दे डालना गेरीबाल्डी का ही काम था। ऐसी निस्पृह देश-सेवा और कौन कर सकता है ?

विक्टर इमानुएल ने 'प्रिंस केलेटा फ़िमी', 'इटालियन सेना का मार्शल' और 'दी ग्रांड क्रास आफ़ दी एननशीएटा' आदि उपाधियों के साथ-साथ पाँच लाख .फ्रैंक वार्षिक देने का प्रस्ताव गेरीबाल्डी के आगे रक्खा, परन्तु उस त्याग-मूर्ति ने इस सब को सधन्यवाद अस्वीकार करते हुए राजा से बिदा माँगी। इसके बाद गेरीबाल्डी अपने घर केपेरारा नामक टापू में चला गया, और वहाँ खेती-बारी का काम करने लगा। कुछ ही दिनों पश्चात् इटालियन पार्लामेण्ट का चुनाव हुआ जिसमें गेरीबाल्डी को भी सदस्य चुन लिया गया था। उसके पास जब इस बात की सूचना आई तो उसने इसे अस्वीकार करते हुए कहला भेजा कि "मेरा स्थान महापरिषद् की कुर्सियों पर नहीं, प्रत्युत समर-भूमि में है। मैं बड़ी उत्सुकता पूर्वक अपने उपयुक्त स्थान के लिए बुलाये जाने की प्रतीक्षा कर रहा हूँ।" वाह रे देशभक्त वीर! तू धन्य है।

गेरीबाल्डी के मस्तिष्क में अब रोम को इटली की प्रधान राजधानी बनाने का विचार .चक्कर काट रहा था। उधर .फ्रांस का

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

कहना था—"मैं रोम कभी नहीं छोड़ सकता।" गेरीवाल्डी ने रोम पर आक्रमण करने का विचार दृढ़ करके सैन्य-संग्रह शुरू कर दिया। आख़िर वह अपनी फ़ौज लेकर 'मेलटिो' में जा ही पहुँचा। युद्ध हुआ, परन्तु वहाँ इटालियन सैनिकों के फ्रांसीसी सेना में सम्मिलित हो जाने के कारण गेरीबाल्डी को सफलता नहीं मिली। इस युद्ध में गेरीवाल्डी को कई करारे घाव लगे जिनके कारण वह लँगड़ा हो गया। वहाँ से लौटकर वह फिर घर आगया और तेरह मास चिकित्सा कराने के पश्चात् स्वस्थ हुआ। यह सब कुछ होने पर भी उसका रोम को हस्तगत करने का विचार अभी ज्यों का त्यों दृढ़ बना हुआ था।

१८६४ में गेरीवाल्डी ने इँगलैण्ड की यात्रा की, जहाँ पर उसका अभूतपूर्व स्वागत हुआ। वह वहाँ के अनेक नेताओं से भी मिला। इँगलैण्ड से लौट कर वह फ्रांस और प्रुशिया के युद्ध में सम्मिलित हुआ। इस संघर्ष में फ्रांस का पतन हुआ। इस पराजय के साथ ही फ्रांस का रोम से सम्बन्ध विच्छिन्न होगया। इधर विक्टर इमानुएल को जब इस बात का पता लगा, तो उसने अपनी समस्त सेना को रोम पर हमला करने की आज्ञा दे दी। गेरीवाल्डी ने जब यह सुना तो वह इटालियन सेना में आ मिला। फलस्वरूप रोम इटली की राजधानी घोषित कर दिया गया और गेरीबाल्डी की साध पूरी होगई।

अब गेरीवाल्डी बहुत वृद्ध होगया था इसलिए युद्धादि में क्रियात्मक रूप से भाग न ले सकता था। इन्हीं दिनों तुर्कों के अधीनस्थ सर्विया, रोमानिया आदि की प्रजा ने शासकों के अत्याचार के विरुद्ध आवाज़ उठाई। तुर्कों द्वारा उत्पीड़ित जनता की दुखगाथा सुन गेरीवाल्डी का हृदय भर आया, परन्तु अब वह शस्त्रास्त्रों से उनकी कुछ सहायता नहीं कर सकता था। फिर भी अख़बारों में लेख लिख कर उसने संसार की सहानुभूति इन

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पीड़ित जातियों की ओर आकृष्ट की। वस्तुतः गेरीबाल्डी मनुष्य-मात्र की स्वतन्त्रता का हिमायती था। अगर ऐसी बात न होती तो वह अमरीका, टर्की यहाँ तक कि अपने शत्रु फ्रांस की भी प्रजा के लिए इतने उद्योग क्यों करता।

१८८० ई० में मीलान निवासियों ने मेटोना के युद्ध में वीर-गति पाए बन्धुओं की स्मृति-रक्षार्थ स्मृति-स्तम्भ स्थापित किया था। इसका उद्घाटन कराने के लिए गेरीबाल्डी को आमन्त्रित किया गया। गेरीबाल्डी उस समय वृद्धावस्था और रोगों के कारण बिस्तर से उठने में भी असमर्थ था, परन्तु वीरों के सत्कार का कार्य करने के लिए वह उस दशा में भी गया। गेरीबाल्डी के इस वीर-प्रेम और साहस को देख वहाँ की जनता की दृष्टि में उसका महत्त्व और भी बढ़ गया। उसने गेरीबाल्डी का बड़ा स्वागत-सत्कार किया तथा उसे गाड़ी में लिटा घोड़ों की जगह मनुष्यों ने जुत कर नगर भर में घुमाया।

मीलान से लौट कर गेरीबाल्डी और भी अधिक बीमार पड़ गया। कई वर्ष रोग-शैया पर पड़े रहने के अनन्तर १८८२ ई० की दूसरी जून को सन्ध्या-समय इस वीर प्रवर ने शरीर-त्यागन किया। आज गेरीबाल्डी का भौतिक शरीर दुनिया में नहीं है, परन्तु उसका यशः शरीर विद्यमान है, और प्रलयकाल तक विद्यमान रहेगा।

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

विज्ञान वार्ता

(Scientific Talks)

लेखक

श्री गुलाबराय, एम० ए०

प्रोफ़ेसर, सेण्ट जोन्स कालेज, आगरा।

वर्तमान युग में बड़े-बड़े नगरों में जो कुछ चहल-पहल यानी मोटर का दौड़ना, चकाचौंध पैदा कर देने वाली बिजली का जलना, हवाई जहाज़ का उड़ना यह सभी बातें विज्ञान के द्वारा प्राप्त हुई हैं। किन्तु भारतीय विद्यार्थी जो अंग्रेजी भाषा से अनभिज्ञ हैं अभी तक इस बात को नहीं जानते कि इन सभी वस्तुओं का निर्माण किस प्रकार तथा किन लोगों ने किया, इन सभी बातों का वर्णन बड़ी रोचकता के साथ चित्रों सहित इस पुस्तक में दिया है। सचित्र पुस्तक का मूल्य १।)

स्वर्गीय-सुमन

आदर्श-जीवन-माला

[सचित्र]

लेखक

पं० हरिशंकर शर्मा 'कविरत्न'

इस पुस्तक में कुछ ऐसी आदर्श जीवनियों का संग्रह है जिनको पढ़ कर विद्यार्थी भारतीय इतिहास की महत्ता को समझ सकें और बड़े होकर भली प्रकार समझ सकें कि उनका इतिहास कितना उज्ज्वल और भ्रान्तजनों को किस प्रकार सन्मार्ग की ओर ले जाना वाला है। विद्यार्थी इन आदर्श घटनाओं को पढ़कर उनको अपने चरित्र के साँचे में ढालने की चेष्टा कर सकते हैं अतः उक्त पुस्तक विद्यार्थियों के लिये अत्यन्त लाभदायक सिद्ध होगी।

मूल्य ||।≈)

गयाप्रसाद एण्ड सन्स

पुस्तक विक्रेता, आगरा

DIGITIZED C-DAC 20-06-2006 04 JUL 2006
CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय,
हरिद्वार

पुस्तक लौटाने की तिथि अन्त में अङ्कित है। इस तिथि को पुस्तक न लौटाने पर छै नये पैसे प्रति पुस्तक अतिरिक्त दिनों का अर्थदण्ड लगेगा।

28 JAN 1961

18 JUN 1974

१००००.६.५६।

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

Entered in Database
Signature with Date

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

पुस्तकालय, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय,
हरिद्वार।
CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

DIGI... ...AC
200... 2..06

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri